"सस्ती-हिन्दी-पुस्तक-माला" का पांचवां पुष्प

महात्मा गांधी के निजी पत्र

"परिचरितव्याः सन्तो यद्यपि कथयन्ति नो सदुपदेशम् ।
यास्तेषां स्वैरकथास्ता एव भवन्ति शास्त्राणि" ॥

सम्पादक

पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी ।

प्रकाशक

'सस्ता-हिन्दी-पुस्तक-माला' कार्य्यालय,
कानपुर ।

प्रथम संस्करण } सम्वत् १९७९ { मूल्य ।~)

संस्थापक :—
बाबू वेणीमाधव खन्ना
और
सेठ चन्द्रभानु गर्ग
आनन्दमठ, कानपुर।

प्रकाशक —
पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
'सस्ती-हिन्दी-पुस्तक-माला' कार्य्यालय,
कानपुर।

मुद्रक —
लाला भगवानदास गुप्त,
कमर्शल प्रेस, जुही-कलां,
कानपुर।

सस्ती-हिन्दी-पुस्तक-माला का

कार्य्यक्षेत्र

—:o:—

(१) इस पुस्तक-माला का उद्देश्य उपयोगी और सामयिक ग्रन्थों को प्रकाशित कर, स्वल्प मूल्य—लागत मात्र—में सुलभ करने का है।

(२) इसमें राजनीति, साहित्य, समाज-नीति, शिक्षा, धर्म्म-तत्व, विज्ञान, श्रमजीवी और कृषकोपयोगी विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित की जायंगी।

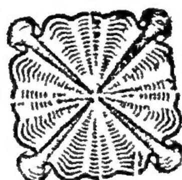
(३) यह पुस्तक-माला प्रयत्न करेगी कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार, गांवों में विशेष रूप से हो और ग्रामीण भाइयों का साहित्य सर्वाङ्ग पूर्ण हो।

(४) यह पुस्तक-माला मौलिक ग्रन्थों को प्रकाशित करने का पूर्ण प्रयत्न करेगी, जिससे हिन्दी संसार में मौलिक लेखकों का जन्म हो और उन्हें प्रोत्साहन मिले।

(५) यह पुस्तक-माला किसी धर्म्म से सम्बन्ध रखनेवाले विवाद-ग्रस्त ग्रन्थों को प्रकाशित न करेगी।

इन पत्रों में महात्मा जी के ऐसे अनेक उपदेशप्रद उद्गार पाठकों को मिलेंगे, जिनके मनन से सहृदय पाठकों के चरित्र में बहुत कुछ परिवर्त्तन हो सकेगा। आशा है, चरित्र-गठन का उच्च आदर्श रखनेवाले सभी लोग इस छोटी सी पुस्तिका से पूरा पूरा लाभ उठावेंगे।

प्रयाग,
आषाढ़ शुक्ला ८,
सं० १९७९ वि०। } लक्ष्मीधर वाजपेयी।



महात्मा गांधी के निजी पत्र

(१)

१४ — ५ — १६०८

ती० मे ··· ध स्नु ··· की सेवा में,

गो० ··· बेचारा चला गया। अपना होने के कारण स्वाभाविक ही यह लिखते समय मुझे भी रुलाई आ रही है। परन्तु बहुत दिनों के मनन से अब मेरे विचार बहुत दृढ़ हो गये हैं। मैं समझता हूं कि हम सब माया के जाल में खूब ही फँसे हुए हैं। जो दशा समाज की है, वही देश की भी है। मेरे हृदय में जो अनेक विचार चक्कर काटते रहते हैं, उनमें से सर्वप्रधान विचार को ही मैं इस समय आपके सामने रख रहा हूं। सच पूछिये तो झूठी लोक-लज्जा अथवा मोह के फन्दे में पड़ कर हम अपने लड़कों के विवाह कर देते हैं, उनमें सैकड़ों रुपये ख़र्च कर देते हैं, और फिर चुपचाप विधवाओं के मुख देखते रहते हैं। हां, यह मैं कैसे कहूं कि विवाह बिलकुल करना ही न चाहिए? परन्तु कोई न कोई मर्यादा तो रखोगे? हम बच्चों के विवाह कर

के उनको केवल दुःख में डाल देते हैं। आगे चल कर वे लड़के सन्तान उत्पन्न कर के और भी अधिक कठिनाइयों में फँसते हैं। हम लोगों के धर्म-नियमानुसार स्त्री-प्रसंग केवल संतानोत्पादन के लिए ही है, शेष सब विषय-वासना है। परन्तु; हमारे आचरण में यह बात कहीं दिखाई नहीं देती। यदि वास्तव में यह सच है, तो क्या सचमुच ही हम अपने लड़कों के विवाह कर के उनको भी अपने ही समान विषयी नहीं बना रहे हैं? इस प्रकार यह विषय-वृक्ष बढ़ता ही जा रहा है। मैं कदापि इसको धर्म नहीं समझता। यद्यपि मैं आप का छोटा भाई हूं, तथापि मैं अपने मन के ये विचार, आप के द्वारा, सारे कुटुम्ब के सामने उपस्थित कर रहा हूं। यही मेरी कुटुम्ब-सेवा है। अपराध होता हो, तो क्षमा करना। चौदह वर्ष अध्ययन और सात वर्ष आचरण करने के बाद, अवसर पाकर, ये विचार प्रकट किये हैं।

मो ··· की दण्डवत्।

---

(२)

जोहान्सबर्ग
२१ — ५ — १९०८

चि० म ···,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे विषय में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। मुझे विश्वास है कि मुझे अपना बलिदान देना ही पड़ेगा। मैं नहीं समझता कि (जनरल) स्मट्स् अन्त तक धोखा दे सकेगा। लोग बिलकुल अधीर

हो रहे हैं, अपना बलिदान देने के लिए वे बिलकुल आतुर हैं। उनको मौक़ा भी मिल रहा है, यह सन्तोष की बात है। मैं जिसमें आत्म-कल्याण समझता हूं, उसका आचरण करते समय यदि आत्म-बलिदान किया जा सका, तो इस से श्रेष्ठ मृत्यु और क्या हो सकती है?

गो ··· का मरना योग्य ही था, परन्तु मृत्यु की कल्पना से जी उदास क्यों होना चाहिए? यह संसार क्षणभङ्गुर है। फिर यदि मेरा प्राण इस संसार से चला जाय, तो उस के कार्य-कारण का विचार मैं क्यों करता रहूं? मृत्यु तक मेरे हाथ से अनुचित कुछ भी न हो—इतनी इच्छा काफ़ी है, और बस इतनी ही चिन्ता होनी चाहिए। मुझे इसी जन्म में मोक्ष मिल सकेगा—ऐसी दशा कम से कम अभी तो प्राप्त नहीं हुई, परन्तु इस समय मेरे विचार जिस ओर जा रहे हैं, उस से कहा जा सकता है कि यदि मैं अपने इन्हीं विचारों में शरीर छोड़ सकूंगा, तो अगले जन्म के अन्त में मुझे मोक्ष अवश्य ही प्राप्त होगा।

मोहनदास का आशीर्वाद।

---

(३)

२६ — ७ — १९०८

डॉ० ख़ु० ··· ··· की सेवा में,

यह पत्र आधी रात को लिख रहा हूं। विस्तृत पत्र लिखने के लिए समय नहीं है। आप मुझे आज्ञा देते हैं कि मैं अपनी फ़िक्र रखूँ; परन्तु आपकी ही शिक्षा है कि

" अपनी " (आत्मा) मरती नहीं, मारती नहीं और न मरवाती है। यदि आपकी आज्ञा यह हो कि शरीर को ही " स्व " समझ कर उसकी चिन्ता रखूँ, तो भगवान् ने उसको " माया " कहा है। फिर फ़िक्र किसकी रखूं? मैं तो " अपने " की ही चिन्ता रखूंगा, अर्थात जिस प्रकार हो सकेगा, उस " स्व " का ज्ञान-सम्पादन करूंगा। यह करते हुए शरीर का बलिदान करने की शक्ति अवश्य ही प्राप्त होनी चाहिए।

यह जो मैं लिख रहा हूं, इसका कारण यह है कि, बहुत सोचने के बाद मुझे यही देख पड़ा है कि हम लोगों की अनेक कहावतें और शिक्षाएं बिलकुल धर्म-विरुद्ध हैं; और जिसे हम लोग सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कहते हैं, उसको व्यवहार में हम बिलकुल ही दूर हटा रहे हैं। मैंने ऐसे व्यवहार के विरुद्ध अपनी सारी शक्तियों को आज़माने का विचार किया है।

मोहनदास की दण्डवत्।

---

(५)

बुधवार

चि० म ... ...,

तुम्हारा पत्र मिला। गो... ...के चले जाने से सभी को उसका अभाव खटक रहा है। हां, इससे एक बात सब के ध्यान रखने योग्य है, वह यह कि मृत्यु का रोकना हमारे हाथ में नहीं है। इसी लिए शरीर का मोह छोड़

कर परमार्थ में मस्त रहना और आत्मसिद्धि का सम्पादन करना चाहिए। ऐसा करने के लिए ब्रह्मचर्य एक उत्कृष्ट और आवश्यक साधन है। ऐसे विचार मेरे मन में बराबर बढ़ते जा रहे हैं।

मोहनदास का आशीर्वाद।

---

(५)

शुक्रवार, (रात में)

चि० म ... ...,

सत्य-पालन करते समय बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। ऐसा एक भी उदाहरण मिलना अत्यन्त कठिन है, जब कि सत्य-पालन करनेवाले प्राणी को शारीरिक कष्ट भोगना न पड़ा हो। शारीरिक दुःख ही एक मात्र सुख है—यदि यह समझ में आजाय तो मनुष्य अपना आत्म-कल्याण कर सकता है। जो हो, यह प्रश्न विचार करने योग्य है। " सत्य की जय "—इस वाक्य का बहुत ही अनर्थ हुआ है, परन्तु इससे हम को विचलित होने का कोई कारण नहीं।

मो ... ... का आशीर्वाद।

---

(६)

माघ शुक्ला १०

प्लेग, हैज़ा, इत्यादि के विषय में तुमने मुझसे अनेक प्रश्न किये हैं। राजकोट में जब चूहे मरे, तब मैंने घर

अथवा बस्ती छोड़ देने की सब को सलाह दी। मेरे ये विचार संवत् १९५= (सन् १=९४) के थे। अब मैं समझता हूं कि मेरे वे विचार भ्रमात्मक थे, यहां तक कि मेरे विचार अब बदल गये हैं। परन्तु दोनों दशाओं में उद्देश्य एक ही था, और वह था सत्य की खोज। अब मेरे ध्यान में यह बात आ गयी है कि इस प्रकार घर छोड़ने से आत्मा के गुणों से अपनी अनभिज्ञता प्रकट होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी भी अवसर पर घर न छोड़ना चाहिए। घर जलने लगे तो छोड़ना ही चाहिए। किसी घर में सांप अथवा बिच्छु इतने हों कि मृत्यु की आशंका हो, तो उसे छोड़ना ही चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि वैसा करने में बिलकुल ही दोष नहीं। जिसने आत्मा को पहचान लिया है—उसका अनुभव किया है—उसके लिए आकाश छप्पर है। वह जंगल के सांपों और बिच्छुओं को मित्र के समान समझेगा। इसके विपरीत, हम सरदी-गरमी के भय से घर में रहते हैं, और वहां जब प्लेगादि का भय उत्पन्न होता है, तब फिर घर छोड़ देते हैं। परन्तु, फिर भी मन के लड्डू खाया करते हैं, कि हमको शीघ्र ही आत्मदर्शन हो जाय तो अच्छा। कम से कम मैं तो ऐसा ही समझता हूं। प्लेग के समय मो··· घर छोड़ कर निकल गये और उन्होंने घर की रक्षा के लिए नौकर को रख दिया। यह मनुष्य के लिए अनुचित है। यदि घर जलता होता तो नौकर भी अवश्य ही चला गया होता। इस उदाहरण से तुम सारा रहस्य समझ सकते हो। प्लेग इत्यादि का भय तो मैं एक साधारण बात समझता हूं। मुसलमान अपना घर नहीं छोड़ता,

और ईश्वर पर भरोसा रखकर चुपचाप बैठा रहता है। श्रद्धा के साथही साथ यदि दूसरे उपाय हो सकें, तो और अच्छा है। जब तक हम भागते रहेंगे, तब तक प्लेग के नष्ट होने की कोई सम्भावना नहीं। जिन जिन गावों में प्लेग होता है, उन उन गावों में हम उसका कारण तो ढूँढ़ते नहीं, वरन उलटे भाग जाते हैं। यह दुर्बलता है। परन्तु मेरे इस उत्तर से अभी तक स्वयं मेरा ही समाधान नहीं हुआ, फिर तुम्हारा कैसे होगा ? हम लोग जब प्रत्यक्ष मिलेंगे, और अनायास प्रश्नोत्तर होंगे, तभी मेरे हृदय की बात मालूम होगी। मैं इस समय पूर्णतया समाधान नहीं कर सकता, इसके दो कारण हैं। एक तो मैं इस समय ऐसे काम में फँसा हुआ हूं कि विस्तारपूर्वक लिखने को समय नहीं है, और दूसरा यह कि मेरी वाणी और कर्म में अन्तर है। मेरे मतानुसार जब दोनों में ऐक्य हो जायगा, तब तुम को तत्काल समझा देने के लिए मुझे यथोचित शब्द मिल जायँगे। प्लेग के भय से बुज़ुर्ग लोग यदि तुम से घर अथवा गांव छोड़ देने को कहें, तो उस समय तुम्हें वैसा ही करना उचित है, क्योंकि जब तक हमारे नैतिक जीवन को धक्का न लगता हो, तब तक बड़ों की आज्ञा मानना हमारा धर्म है, उसी में कल्याण है। मृत्यु के भय से नहीं, किन्तु बड़ों की प्रसन्नता के लिए यदि तुम प्लेगवाला घर छोड़ दो, तो यह तुम्हारा पूर्ण निर्दोष आचरण होगा।

आजकल ऐसा विचित्र समय आगया है कि, बहुत अवसरों पर लोगों का बड़ों की आज्ञा पालन करने

के विषय में विचार करना पड़ता है। मैं समझता हूं कि माता पिता का प्रेम एक ऐसा रहस्यमय विषय है कि किसी अत्यन्त सबल कारण के बिना उनका चित्त न दुखाना चाहिए। परन्तु माता-पिता के अतिरिक्त अन्य बड़ों के विषय में भी इतना कठोर नियम पालन करने को मेरा अन्तःकरण नहीं कहता। जहां हम को नैतिक दृष्टि से कुछ सन्देह उत्पन्न होगा, वहां निम्न श्रेणी वाले बड़ों की आज्ञा का उल्लंघन करना पड़ेगा। उल्लंघन करना कर्त्तव्य है। यदि कल मेरा पिता मुझ से चोरी करने को कहे, तो यही उचित है कि मैं चोरी न करूं। यदि ब्रह्मचर्य पालन करने की मेरी इच्छा हो, और माता पिता इसके विरुद्ध आज्ञा दें, तो मुझे नम्रता-पूर्वक उस आज्ञा का उल्लंघन करना चाहिए। मैं समझता हूं कि म ... ... और रा ... ... की सगाई तब तक न की जाय, जब तक वे स्वावलम्बी न बन जायँ, यही उचित है। यदि मेरे माता पिता आज जीवित होते और वे मेरे इस मत के विरुद्ध कहते तो मैं नम्रतापूर्वक इस विषय में उनका विरोध करता, और मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे मेरे इस कार्य को उचित ही मानते।

बस इतना ही लिखना पर्य्याप्त होगा। यदि कुछ विशेष शंका उत्पन्न हो तो प्रसन्नतापूर्वक पूछो। ऊपर जो कुछ लिखा है, वह इसी विश्वास से लिखा है कि तुम अर्थ का अनर्थ न करोगे। कदाचित कोई पाखंडी मेरे उपर्युक्त कथन को उद्दण्डतापूर्ण बतायेगा, अथवा मेरे शब्दों पर अन्धविश्वास करके कोई दूसरा ही अर्थ निकालेगा; और मनमाने कारणों से बड़ों की आज्ञा

का अपमान करेगा, यही नहीं, बल्कि ऊपर जो वाक्य प्रेग के विषय में लिखे गये हैं, उनसे यह भी अर्थ निकलेगा कि उचित उपाय समझ कर मद्य मांसादि सेवन करने में भी कोई हानि नहीं, तो यह उसका पाखण्ड होगा।

म .... का आशीर्वाद।

---

(७)

६ नवम्बर १६०८

आज तुम्हारी तबीअत के विषय में मि० वेस्ट का भेजा हुआ तार मिला। मेरा हृदय विदीर्ण होगया, मैं रो रहा हूं, परन्तु तुम्हारी सेवा करने के लिए वहां आने योग्य मेरी स्थिति नहीं। मैंने सत्याग्रह के इस युद्ध में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। मेरा वहां आना सम्भव नहीं। सज़ा दी जायगी, तभी आ सकूंगा और यह असम्भव है। तुम ज़रा साहस रखो, पथ्य से रहो, फिर अच्छी हो जाओगी। परन्तु मेरे दुर्भाग्य से यदि तुम नहीं बच सकोगी, तो मैं तुम को इतना ही लिखता हूं कि, इस वियोगावस्था में, मेरे जीवित रहते हुए, यदि तुम चली जाओगी, तो कोई हानि नहीं। तुम पर जो मेरा उत्कट प्रेम है, उसके कारण—लोगों की दृष्टि में, चाहे तुम चली जाओ; परन्तु फिर भी—तुम मेरे लिए जीवित रहोगी। तुम्हारी आत्मा अमर है। मैं तुमको विश्वास दिलाता हूं कि यदि तुम्हारा अन्त हो जायगा, तो, जैसा मैंने तुम से अनेकों बार कहा है, मैं फिर

दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करूंगा। परमात्मा पर विश्वास रख कर तुम सुख से प्राण छोड़ो। तुम्हारी मृत्यु भी सत्याग्रह का एक अंग ही है। मेरा युद्ध केवल राजनैतिक ही नहीं, वरन वह धार्मिक भी है और इस लिए अत्यन्त शुद्ध है। उस में मर जायँ, तो भी भला और जीते रहें, तो भी भला। यह समझ कर तुम मन में कुछ भी खेद नहीं करोगी, यही मुझे आशा है — यही मेरी तुमसे याचना है।

---

(८)

शनिवार, रात, ६ बजे।

चि० म० ··· ···,

इतना हो चुकने पर, फिर ऐसी पुस्तकें पढ़ते पढ़ते अन्त में तुम अन्तर्विचार कर सकोगे। प्रत्येक ग्रन्थ में कोई न कोई त्रुटि रहती ही है — और, अवश्य रहेगी। लेखक के निजी आचरण की छाप उसके लेखन पर पड़े बिना नहीं रहती। इसलिए मनुष्य मात्र के लेखों में कोई न कोई त्रुटि अवश्य ही रहती है। उसको मूंग के कचरे की भांति निकाल कर सुन्दर दाना भर ले लेना चाहिए। अन्तर्विचार की आदत रखनेवाले के लिए यह सहज है।

म ··· ··· का आशीर्वाद।

---

(९)

रविवार।

चि० म ... ...,

आत्मा के अतिरिक्त सब क्षणभंगुर है, यह विचार सदैव मन में रहना चाहिए। यही नहीं, वरन उसकी सिद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए। मैं ज्यों ज्यों विचार करता हूं, त्यों त्यों मुझे सत्य और ब्रह्मचर्य की महिमा अधिकाधिक विचित्र मालूम हो रही है। मैं समझता हूं कि सत्य में ही ब्रह्मचर्य और अन्यान्य नीतिधर्म का समावेश होता है; परन्तु फिर भी ब्रह्मचर्य एक सत्य की ही टक्कर का महान् तत्व है; और मेरा दृढ़ विश्वास है कि दोनों के पालन से प्रत्येक कठिनाई दूर होनी चाहिए। सच्ची कठिनाई तो अपने मनोविकार की ही है। यदि बाह्य विषयों को सुख का आधार न समझें, तो "लोग क्या कहेंगे" इस प्रश्न के बदले "हमें क्या करना चाहिए" — यही हम सोचने लगेंगे।

म ... ... का आशीर्वाद।

---

(१०)

विपत्ति में धैर्य के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। जो साधन ट्रांसवाल में, वही अपने देश में हैं, यह सोचते हुए मेरे मन में तो कोई शंका ही नहीं; परन्तु ...... का पत्र यही सिद्ध कर रहा है कि, हमारी तैयारी फिनिक्स जैसे प्रदेश में ही हो सकती है। यद्यपि स्मशान

म भी निर्भय नींद लेना हमारा कर्त्तव्य है; परन्तु यहां नींद का प्रारम्भ होते ही भय से मृत्यु होजाने की अधिक सम्भावना है। इस समय हमारा भारतवर्ष स्मशानवत् है। यहां रह कर मीराबाई का "बोल मा, बोल मा, बोल मा, सीताराम बिना बिजुं बोल मा" अथवा ऐसे ही अन्यान्य पद कह कर निर्भयतापूर्वक भजन किया जा सकेगा। परन्तु यहां युद्ध की तैयारी होसकेगी, जिसका, करना आवश्यक है × × × × मुझे ऐसा आभास होरहा है, मानों मुझ में इतना बल आ रहा है कि प्रत्येक रीति और प्रत्येक स्थान पर होने वाली मृत्यु का आनन्दपूर्वक स्वागत किया जा सकेगा। ऐसा ही बल सब को प्राप्त हो, यही मेरी इच्छा है।

---

(११)

साधारण विचार करने पर भी तुम्हारे ध्यान में आजायगा कि, इस समय कौन किसको निकाले, यह प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। यदि फिनिक्स की दशा अत्यन्त निर्बल हो जायगी, तो निकालना अथवा रखना कुछ करना नहीं पड़ेगा। जिसमें शक्ति होगी, वही टिकेगा। उस समय यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि, कौन रहेगा? आज तनख्वाह नहीं देते, पर खाने को देते हैं। उसमें भी कमी करके, कष्ट सह कर, सूखी रोटी खाकर कौन टिकता है, बस, यही प्रश्न है। × × × फिनिक्स ही कहां फिनिक्स में टिक सकता है? जहां फिनिक्स का उद्देश्य है, वहां फिनिक्स है। × × × यदि तुम यह मानते हो कि मेरी आत्मा

समर्थ है, तो फिर वैसी ही तुम्हारी भी है। हमारी तुम्हारी आत्मा में कुछ भी भेद नहीं। पर तुम में जो यह इतनी अनात्मता—भीरुता—संशय—अनिश्चितता, इत्यादि जो कुछ हो, उसको निकाल डालो, बस, हम दोनों बराबर ही हैं। अन्तर इतना ही है कि मैंने अत्यन्त प्रयास से बहुत से आश्रम स्थापित किये हैं, उतने अथवा इससे भी अधिक, दृढ़तापूर्वक, साहस के साथ, तुमको भी स्थापित करने हैं।

---

(१२)

इस समय यही दशा है। मैंने जो कुछ कहा है उसके विरुद्ध चाहे सारा संसार खड़ा हो जाय, मुझमें निराशा उत्पन्न नहीं होगी। यह मैं गर्व से नहीं कह रहा हूं, वरन यह सत्य है। भारतवर्ष को शुद्ध करने की हमें महत्त्वाकांक्षा नहीं है, किन्तु हम स्वयं शुद्ध हों, यही हमारा मनोरथ है। यही मनोरथ—यही महत्त्वाकांक्षा—होनी चाहिए, अन्य सब व्यर्थ है। जिसने आत्मा को नहीं पहचाना उसने कुछ भी नहीं जाना। रावण के उत्साह से हमें आत्मा की ओर जाना चाहिए।

---

(१३)

... ...,

तुम्हारे विषय में जो असन्तोष है, अथवा तुम्हारे ऊपर जो कटाक्ष हो रहे हैं, उनके कारण यदि तुम अलग

होना चाहते हो, तो यही कहना पड़ेगा कि तुम ने कायरता
दिखलाई; और उस दशा में फिर उनके और तुम्हारे विषय
में मेरा जो कर्त्तव्य है, उसको करना मेरे लिए कठिन
होगा। × × तुम्हारे अलग होजाने से उनका अकल्याण
अवश्य ही होगा। हम लोग एक महान् प्रयत्न में लगे हैं।
तत्वज्ञान की खोज में हैं।

---

(१४)

ईश्वर परमात्मा है और जो आत्मा है उसको मोक्ष
है,—पाप पुण्य है। मनुष्य को इसी जन्म में मोक्ष मिलना
सम्भव है। मन में यह बात अङ्कित हो जाने के बाद भी
हमारा संशोधन जारी रहना चाहिए। यह कहने का तिल-
मात्र भी कारण नहीं कि जो कुछ हो रहा है, सब ठीक ही है।
अथवा बुजुर्गों ने जो कुछ किया, वह सब ठीक ही था। वास्तव
में ऐसा मान लेना आत्मा के विरुद्ध है। इसमें सन्देह नहीं कि
जो पुराना है उसमें अधिकांश ठीक है, परन्तु जिस प्रकार
अग्नि में धुआं अवश्य ही रहता है, उसी प्रकार प्राचीन
उत्तमता में निकृष्टता भी है। अस्तु: इन सब का पृथक्करण
करके तत्त्व ग्रहण करने में ही सच्चा ज्ञान है।

श्रीकृष्ण का प्रसाद प्राप्त होने के लिए एक ही सरल
मार्ग है, वह यह कि शनैः शनैः बुद्धि द्वारा सत्यादि गुणों
का सेवन करके सब विषयों से राग हटा कर एक ही राग
रखना चाहिए। × × शरीर चला जायगा, किन्तु इसकी
चिन्ता नहीं।

ज्ञानरूपी कौवा यदि वासनारूपी पिंड खा डालेगा,

तो पिता अवश्य मिलेगा। ··· ··· जो लड़का माता पिता को भूल जाता है, वह इस संसार में क्या कर दिखायेगा? तुम्हारी और ··· ··· की कृत्ति में कुछ दोष नहीं है, इस लिए मैं निश्चिन्त हूं।

··· ··· प्रदर्शिनी के विषय में लिखा, सो वही परिणाम सब जगह हुआ है। स्वर्ण-मृग की भांति है, फिर जब श्री सीतादेवी को लोभ उत्पन्न हुआ तब हमारी तुम्हारी कौनसी बात? सत्य तो यह है कि यह सारी पश्चिमी सभ्यता की चमक-दमक है। यदि इस चमक-दमक से हमारी आंखें चौंधिया न जावें, तो समझ लो कि हम जीत गये।

इस संसार में स्त्री से निर्लिप्त रहने—विषय को मारने—के समान कठिन कार्य कदाचित ही और कोई हो। इस ओर तुम प्रयत्नशील हो, अतएव तुम को इस में अवश्य ही सफलता होगी। प्रयत्न करते रहना चाहिए, और फल-सिद्धि की साधना करते रहना चाहिए, इससे पूर्ण सिद्धि होगी। ये मेरे विचार परिपक्व होजाने पर भी — और उनको व्यवहार में लाने का प्रयत्न करते हुए ही — रा० और दे० की प्राप्ति हुई है। मेरी इस आरम्भिक निष्फलता-द्वारा ही तुमको अधिक उत्साह प्राप्त होना चाहिए। कवि ने पुरुष को सिंह की उपमा दी है, हम सब को इन्द्रिय-वन का राजा बनने की शक्ति आत्म-चिन्तन-द्वारा प्राप्त होगी।

---

(१५)

सुदामा जी का चरित्र मैंने पढ़ डाला था। सुदामा और नरसी मेहता की दरिद्रता से स्पर्धा करने का मुझे उत्साह हुआ है। इसी से मैंने लिखा कि··· ···का जो मान है वह शुष्क है, और सुदामा का मान सच्चा तथा अनुकरणीय है···श्रीकृष्ण को मैं परमात्मा मानता हूं। वह परमात्मा कौन है? वह अर्जुन का 'सारथी' सुदामा का 'मित्र' और नरसी मेहता का 'ऋण-मुक्त-कर्त्ता'! इसके ऊपर टीका-टिप्पणी करने का मुझे स्वप्न में भी विचार नहीं आया। यदि मेरे पत्र से तुम को ऐसा आभास हुआ, तो इसके लिए मैं पापी हूं, इस विचार से मैं थरथर कांप रहा हूं कि मेरे हाथ से इस विषय में एक अक्षर भी किस प्रकार निकला। जब से तुम्हारा पत्र मिला, मैं घबड़ा गया हूं। सुदामा जी की पत्नी ने जो ताना मारा, उसे मैं अलंकारिक-व्यङ्ग समझता हूं। फिर भी यदि वह शब्दशः (जैसा कि चरित्र में लिखा है,) वैसा ही बोली हो, तो भी उसमें कोई विरोध अथवा आश्चर्य नहीं! स्त्री और क्या कहेगी। सुदामा जी का उद्देश्य यही था कि, सब सहन कर चुप रहा जाय। ऐसी दशा में स्त्री यह कहेगी ही कि, "क्यों, जब श्रीकृष्ण के समान मित्र मौजूद हैं, तब फिर उनसे सहायता क्यों नहीं लेते?" सुदामाजी बहुत ग़रीब थे; और उसी दशा में सन्तुष्ट थे। वे महान् भक्त थे। उसी प्रकार नरसी मेहता ने भी, यद्यपि श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन किया, तथापि अपनी दरिद्रावस्था से मुक्त होने की उन्होंने कभी इच्छा नहीं की!

मुझे फिर विकालत करने का अवसर न मिले, यही मेरी प्रबल इच्छा है। मैं अपने जीवन भर, फिनिक्स में, पूर्ण दरिद्रावस्था में रहूं—यही मेरी इच्छा है, यही मैं ईश्वर से मांगता हूं। परन्तु सब लक्षण विपरीत दिखाई पड़ते हैं ...। जान पड़ता है कि "कल के लिए एक पाई भी नहीं, कैसा होगा ?" ऐसी चिन्ता करने का अलभ्य अवसर न मिलेगा। मैं इस को अलभ्य लाभ समझता हूं क्योंकि इस संसार का बहुत बड़ा भाग इसी दशा में है। बुद्ध आदि की यही दशा थी, आगे भी यही रहेगी। इसके बिना आत्मा का अनुभव न होगा यह मेरा विश्वास हो रहा है। × × ने हम को पढाया; पर ऐसा मालूम होता है कि वह ज्ञान शुष्क था। सच्चा ज्ञान तो सुदामा जी अथवा नरसी मेहता ने ही दिया। इन्द्रियों के भोग भोगते हुए यह कहना कि, "मैं कुछ नहीं करता, इन्द्रियां अपना अपना काम करती हैं, मैं तो कृष्ण स्वरूप हूं"—कोरे मिथ्यावाद का लक्षण है। जिसने पूर्णतया इन्द्रिय-दमन किया है; और शरीरयात्रा भर के लिए ही जिसकी इन्द्रियां व्यापार करती हैं, ऐसा मनुष्य यदि उपर्युक्त वाक्य कहे, तो उसे शोभा देगा। हम में से किसी को भी उपर्युक्त वाक्य कहने का अधिकार नहीं; और जब तक सच्ची दरिद्रता न आ जावे तब तक वैसा अधिकार मिल भी नहीं सकता। यह नहीं कहा जा सकता कि जो राजा होता है, वह अपने पुण्य-प्रताप से ही होता है। सच तो यह है कि निज कर्मानुसार सब कुछ होता है। परन्तु यह कहना, कि वह कर्म पुण्य-कर्म ही था, आत्मा के गुणों को देखते हुए मिथ्या

ठहरता है। यदि ये विचार तुम सब की समझ में आ जायंगे, और जो उत्कृष्ट चित्र मैंने ऊपर अंकित किया है वह स्थिति प्राप्त करने की यदि इच्छा करते रहोगे, तो परमात्मा वैसा समय हम लोगों को अवश्य ही एक न एक दिन ला देगा।

---

(१७)

प्रीटोरिया-जेल।
२५ — ३ — १९०६

चि० मणिलाल,

× × × मैंने अब जेल में बहुत कुछ पढ़ लिया है। इमर्सन, रस्किन, मेज़िनी की कृतियां पढ़ रहा हूं। उपनिषद भी पढ़ता रहता हूं। शिक्षा का अर्थ अक्षरज्ञान नहीं, किन्तु चरित्रविकास और धर्म का सच्चा ज्ञान है। यह मेरा मत सब प्रकार के पुस्तकावलोकन से अधिकाधिक दृढ़ हो रहा है। यदि शिक्षा का यही उद्देश्य होगा — और मेरे मतानुसार यही सच्चा उद्देश्य है — तो इस समय तुम को उत्तम प्रकार की शिक्षा मिल रही है।

माता की सेवा करते समय उसके तीव्र स्वभाव को सहन करना, चि० हीरालाल की अनुपस्थिति में चि० चंची की मनभाती चीज़ की पहले से ही अटकल लगाकर उस की फिक्र रखना, जिससे उसको चि० हीरालाल की याद न आवे, रामदास और देवीदास को सम्हालते रहना— इससे अधिक उत्कृष्ट शिक्षा और कौन सी हो सकती है? तुम यदि इस काम में पास हो गये, तो यह मानने में कोई

हानि नहीं कि तुम को आधी से अधिक शिक्षा मिल चुकी।

उपनिषदों पर नाथूराम जी की जो प्रस्तावना है, उसके एक वाक्य ने मेरे मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। वे लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य अवस्था, जो कि पहली है, वह अन्त की अवस्था, अर्थात् संन्यासावस्था के समान है। यह बिलकुल ठीक है; निर्दोषावस्था में, अर्थात जीवन के बारहवें वर्ष तक ही आनन्द भोगा जा सकता है। लड़का जब अपनी उम्र पर आ जावे, तब उसे अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान अवश्य ही करना चाहिए। बारह वर्ष के बाद प्रत्येक मनुष्य को अपने आचार-विचार में सत्य और अहिंसा-विषयक संयम का पालन करना ही चाहिए। यह कार्य ऐसी अभ्यास-पद्धति से नहीं होना चाहिए जिससे जी ऊब उठे; किन्तु स्वाभाविक विनोद-पद्धति से ही होना चाहिए।

राजकोट के बहुत से बच्चे मेरा स्मरण करते हैं। जब मैं तुम से छोटा था, तब मुझे बड़ों की सेवा में सच्चा आनन्द मिलता था। बारहवें वर्ष के बाद फिर मुझे वैसा आनन्द नहीं मिला। यदि तुम सद्गुणों का अनुकरण करोगे तो तुम्हारा जीवन सद्गुणमय बनेगा, और यह समझा जायगा कि तुमने अवश्य ही मेरा शिक्षादर्श प्राप्त किया। ऐसे ऐसे गुण जब तुममें आ जायंगे, तब तुम पृथ्वी के चाहे जिस कोने में अपना जीवन व्यतीत कर सकोगे, और आत्मज्ञान—ईश्वर-ज्ञान—प्राप्त करने के मार्ग में लगोगे।

हां, इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि तुम अक्षर-ज्ञान प्राप्त ही न करो; वास्तव में बात तो यह है कि उस

काम है कि, माता पिता की सेवा करो, जो कुछ हो सके। उतना पढ़ो; और खेती करो। आगे की चिन्ता करना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है, वह तुम्हारे माता पिता का कार्य है। उनके बाद तुमको उस चिन्ता का अनुभव प्राप्त होगा। हां, एक यह निश्चय अवश्य करना चाहिए कि, बैरिस्टरी अथवा डाक्टरी का व्यवसाय हम नहीं करेंगे। हम दरिद्री हैं; और दरिद्री ही रखने के लिए परमात्मा से याचना करते हैं। द्रव्य की आवश्यकता सिर्फ पेट भरने के लिए ही है। फिनिक्स की उन्नति करना हमारा कर्त्तव्य है; क्योंकि इसी मार्ग से हमको आत्मा का पता लगेगा; और हमारे हाथ से देश-सेवा भी होगी। इस बात का सदैव ध्यान रखो कि तुम्हारी चिन्ता मुझे बनी रहती है। अपना चरित्र गठन करना ही मनुष्यमात्र का सच्चा कर्त्तव्य है। केवल कमाई के लिए ही शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। जो मनुष्य कभी मनुष्यता का त्याग नहीं करता, वह कभी भूखो नहीं मरता; और यदि इस प्रकार मरने का मौका ही आ जाता है, तो वह कभी नहीं डरता। तुम निश्चिन्त रह कर, वहां जो अध्ययन कर सको, करते रहो। यह लिखते हुए तुमसे मिलने की, और अपना मन दाब रखने की इच्छा होती है; किन्तु यह बात असम्भव होने के कारण आँखों में आँसू आते हैं। 'बापू' तुमपर कभी निर्दय नहीं होगा, इसका विश्वास रखो। मैं जो कुछ करता हूं तुम्हारे कल्याण के लिए ही करता हूं। तुम दूसरे की सेवा करते हो, वह व्यर्थ नहीं जायगी।

---

(२०)

७ — ८ — १९०९

चि० ना ... ...,

तुम्हारा पत्र पढ़ कर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ। मैं जानता हूं कि भारतवर्ष के अधिकांश लोगों को इस लड़ाई का रहस्य मालूम नहीं। इससे यही स्पष्ट होता है कि हमारे पूर्वजों के आत्म-बल का ज्ञान इस समय दब गया है।

समय अवश्य लगेगा; परन्तु ज्यों ज्यों ज्ञान होता जायगा, त्यों त्यों आत्म-बल कसौटी पर उतरता जायगा। मैं जिस आत्म-बल के विषय में लिख रहा हूँ, उसका अन्तर्भाव मन्दिर इत्यादि में जाने के बाह्य उपचारों में बिलकुल नहीं होता। कभी कभी ये उपचार आत्म-बल के विरोधी भी होते हैं। यदि 'इंडियन ओपीनियन' को ध्यान-पूर्वक पढ़ा होगा, तो यह बात समझ में आ जायगी। छ ... ... विशेष समझा सकेंगे। वहां बैठे बैठे भी तुम इस बल का प्रयोग कर सकोगे। सत्य और अभय को दृढ़ करना ही इसका पहला पाठ है।

मो ... ... का आशीर्वाद।

---

(२१)

जोहान्सबर्ग,
१० — ८ — १९०९

चि० मणिलाल,

सुलह होने की अब बहुत ही कम सम्भावना है; इस

लिए यह पत्र मंगलवार को लिखे डालता हूं, क्योंकि अब आगे चल कर अधिक कार्य बढ़ने की आशा है। × × × ज्यों ज्यों मैं यहां का अनुभव प्राप्त करता जाता हूं, त्यों त्यों यही मालूम होता है कि यहां सब से अधिक और उत्तम शिक्षा मिल सकेगी। ऐसा समझने का कोई विशेष कारण नहीं; इसके अतिरिक्त मुझे यह भी मालूम हुआ है कि यहां की शिक्षा का कुछ भाग दोष-युक्त है। फिर भी यह मन में आता है कि तुम सब थोड़े दिनों के लिए यहां रह जाओ। हम जब कि अपना कर्त्तव्य सुन्दर रूप से बजा रहे हैं, तो फिर जो कुछ होना होगा, वह होगा। तुम्हारा दृढ़ता-पूर्वक वहां का पढ़ना एक प्रकार से यहां आने की तैयारी ही है।

× × × ×

हम जितने पेड़ों की रक्षा कर सकते हैं, उससे अधिक पेड़ बाग़ में हैं — अतएव वे यही प्रकट करते हैं कि हमारा ज्ञान कच्चा है। जितना परिश्रम हो सके, उतना करके रखवाली करो।

का ··· के यहां पुत्रोत्पत्ति हुई, अच्छा हुआ। तथापि मेरे विचार तुमको मालूम ही हैं। तदनुसार मुझे खेद भी होता है। देशकाल का विचार करते हुए ऐसा मालूम पड़ता है कि, इस समय बहुत ही थोड़े भारतवासियों को विवाह करने की आवश्यकता है। विवाह का अर्थ भी बड़ा गम्भीर है। विषयोपभोग के लिए जो मनुष्य विवाह करता है, वह पशु से भी अधिक नीच है। विवाहित को संतानोत्पादन के लिए ही मैथुन करना चाहिए, यही धर्मशास्त्र भी

कहता है। इस दृष्टि से देखने पर यही कहना पड़ता है कि आजकल उत्पन्न होनेवाली सन्तान केवल विषय-वासना का फल है, इसी कारण वह नास्तिक और चरित्र हीन होती जाती है।

× × × ×

बापू का आशीर्वाद।

---

(२२)

लंडन, ३० — ८ — १९०९

महाशय स्वामी जी,

कृपापत्र मिला। कुछ दिन पहले आपने डिपो-रोड पर "कर्ज़न वायली" विषयक जो व्याख्यान दिया, मैं ने उसको पढ़ा था। शिक्षाविषयक पत्र भी पढ़ा। उपर्युक्त तीनों लेख पढ़ कर मुझे खेद हुआ। आपने मेरे पास जो पत्र भेजा, वह आपके इसलाम-धर्म-विषयक विचारों का निदर्शक है। इसके अतिरिक्त वह पत्र यह भी सूचित करता है कि इस्लाम धर्म जानने वाले के प्रति आपका कैसा व्यवहार है ? मैं आपके इस्लाम-धर्म विषयक मत के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखता, परन्तु मैं समझता हूं कि इस्लाम-धर्म पर आपका जो कटाक्ष है, वह हिन्दू-धर्म के रहस्य का विरोधी है। केवल कटाक्ष ही होता, तब भी कोई बात न थी, किन्तु उसको प्रकट करते हुए आपने उस मौक़े पर जो नीति-विरुद्ध व्यवहार किया है, वह विशेष दुःखदायक है।

आपका यह कथन अत्यन्त दीनतादर्शक है कि हिन्दू-धर्म के रक्षक अंगरेज़ हैं। यदि मैं स्वयं ही अपने धर्म की रक्षा करने के लिए समर्थ नहीं हूं तो दूसरे क्या करेंगे? सिर! मैं समझता हूं कि शिक्षा-विषयक आपके विचार हिन्दू-मुसलमानों में केवल विरोध उत्पन्न करने वाले हैं, यदि हिन्दू मुसलमानों में इतना बड़ा अन्तर रखने की आवश्यकता है, तो फिर भारतवर्ष का पराधीन रहना ही उचित होगा। फिर उसमें विदेशियों को क्या दोष दिया जाय? सच तो यह है कि ऐसा अन्तर रखने से हिन्दू-धर्म का लोप ही हो जायगा! सौभाग्य से हिन्दू-धर्म अचल है। हज़ारों वर्ष से उसकी रक्षा हो रही है, और मेरे धर्म-गुरुओं के हाथ से भी उसका लोप नहीं हो सकता, यह मेरा अटल विश्वास है। आपको विशेष क्या लिखा जाय? आप के ज्ञान के प्रति मुझे आदर है, किन्तु आपके व्यवहार से मुझे खेद हो रहा है।

म ··· का आशीर्वाद।

---

(२३)

जोहान्सबर्ग
१७—६—१९०९

× × × ×

चि० मणिलाल,

परोपकार करना, दूसरे की सेवा करना, और यह करते हुए अभिमान में बिलकुल न आना— बस, यही

सच्ची शिक्षा है। ज्यों ज्यों तुम वयस्क होते जाओगे, त्यों त्यों यह बात विशेषरूप से तुम्हारे अनुभव में आती जायगी। दीन-दुखियों की सेवा करने से अधिक श्रेष्ठ और कौन सा मार्ग है? इसी में धर्म का बहुत सा समावेश हो जाता है।

मि० वेस्ट ने 'बा' को अंडे का रस (शोरबा) दिलाया; परन्तु इस विषय में निर्विकार भाव ही रखना चाहिये। यदि अंडे के रस के बिना तुम्हारी मां का प्राण भी चला गया होता, तो भी मुझे कोई आपत्ति न थी। क्योंकि उस की आज्ञा के बिना मैं उसे वह रस कदापि न देने देता। आत्मा की अपेक्षा शरीर अधिक प्रिय कदापि न मालूम होना चाहिए। आत्मा को पहचाननेवाला यह जानता रहता है कि हम शरीर से भिन्न हैं। वह शरीर का हिंसक है, रक्षक नहीं। यह सब समझने में कठिन है, परन्तु पवित्र और संस्कारयुक्त प्राणी की समझ में यह बात सहज ही आ जाती है, और वह उसके अनुसार चलता भी है। ऐसा समझना अत्यन्त भ्रमपूर्ण है कि आत्मा जब शरीर में रहेगी तभी कुछ भला अथवा बुरा कर सकती है। इस भ्रमात्मक विचार के कारण ही इस संसार में बड़े बड़े भयङ्कर पाप हुए हैं; और हो रहे हैं × × यह शरीर दमन करने के लिए ही हमें प्राप्त हुआ है। × ×

नहीं आता। कमाऊ बनने की इच्छा क्यों हो रही है? यह कुछ ठीक नहीं, क्योंकि परमात्मा सब को पेट के लिए देता है। मजूरी कर के भी तुम्हारा पेट भरेगा! इसके अतिरिक्त हमको तो फिनिक्स के उद्धार में,— अथवा ऐसे ही कार्य में मरना है— फिर कमाने की कौन सी बात? अच्छा, यदि देश के लिए तुमको पढ़ना है; तो तुम इस समय भी पढ़ ही रहे हो। और यदि कहो कि आत्मसंशोधन के लिए पढ़ना है, तो इसके लिए तो शुद्ध होने की शिक्षा चाहिए; और तुम पवित्र हो — ऐसा लोग कहते हैं! फिर रह क्या गया— यही कि तुम को अधिक काम करने के लिए पढ़ना है। परन्तु इसके लिए इतनी उतावली दिखलाने की आवश्यकता नहीं। जो फिनिक्स में हो सके, वह कर लो, शेष के लिए आगे देखा जायगा। यदि ऐसा तुम समझते हो कि तुम्हारी चिन्ता मुझे है तो तुम स्वयं चिन्ता करना छोड़ दो।

बापू का आशीर्वाद।

---

(२७)

कीलडोनन केसल,
२४ – ११ — १९०९

चि० मणिलाल,

रात के साढ़े नौ बजे हैं। केप टाउन अब यहां से पांच दिन का मार्ग है। दाहने हाथ से लिखते लिखते थक गया हूं, इसलिए अब तुम्हारा यह पत्र बायें हाथ से लिख रहा हूं।

सम्भव है कि मुझे बाहर ही बाहर जेल जाना पड़े, अतएव यह पत्र तुम्हें लिख रहा हूं।

मैं समझता हूं कि मेरे जेल जाने से तुमको आनन्द ही होगा; क्योंकि तुम समझदार हो। इस लड़ाई का भेद ही यह है कि, जेल जाने में आनन्द माना जाय; और प्रसन्नता से रहा जाय।

फिनिक्स के विषय में पूछा, सो भी अच्छा हुआ। हम आत्मा की खोज कैसे कर सकेंगे और देश-सेवा हमारे हाथ से कैसे होगी — इसका जब पहले विचार कर लिया जायगा, तब फिर यह समझाया जा सकेगा कि फिनिक्स से हमारा क्या सम्बन्ध है। आत्मशोध करने के लिए पहले नीति पक्की होनी चाहिए। अभय, सत्य और ब्रह्मचर्य — इन गुणों का सम्पादन करना ही नीति है। इसके करने से स्वयं ही देशसेवा होती है। इसके लिए फिनिक्स से बहुत सहायता मिलेगी। शहर की बस्ती बहुत घनी होती है, और वहां अनेक मनोमोहक वस्तुएँ भी होती हैं, अतएव मेरी राय में वहां नीति की रक्षा करना बहुत कठिन होता है! इसलिए ज्ञानी पुरुषों ने फिनिक्स के समान एकान्त-स्थल बतलाया है। अनुभव ही एक सच्ची पाठशाला है, जो अनुभव तुम्हें फिनिक्स में प्राप्त हुआ है, वह अन्यत्र मिल नहीं सकता। आत्मशोधन के विचार भी वहीं किये जा सके हैं।

× × × × ×

(२८)

किलडोनन केसल,
बुधवार ।

चि० रामदास,

× × × देखो, तुम को कुछ नहीं लाये, इस लिए तुम बापू पर नाराज़ न होना ! मुझे कोई चीज़ पसन्द ही नहीं आई, यूरोप की चीज़ें मुझे पसन्द ही नहीं आती, मैं करूं क्या ? मुझे तो भारतवर्ष का ही सब कुछ पसन्द है। यूरोप के लोग तो अच्छे हैं; पर उनका रहन सहन अच्छा नहीं।

---

(२९)

चैत्र शुक्ला १२ मंगलवार.
सं० १९६७।

चि० मणिलाल,

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

जब अर्जुन ने भगवान कृष्ण से पूछा कि, मनुष्य अनिच्छा से,—अपनी मर्ज़ी के विरुद्ध भी पाप में प्रवृत्त क्यों होता है, तब भगवान ने उनको उपर्युक्त उत्तर दिया। इसका अर्थ यह है कि पाप का मूल काम है, क्रोध है, ये रजोगुण से उत्पन्न होते हैं, ये बहुभक्षी हैं, और भारी पापी हैं, इनको बहुत बड़ा शत्रु जानो। यह एक सिद्धान्त है, अतएव जब मि० के० क्रुद्ध हुए थे, तब तुमको शान्त रहना चाहिये था।

हमारे बुज़ुर्ग लोग जब हम से क्रुद्ध हों, तब हमको नम्र हो जाना चाहिए, चुप हो जाना चाहिए, और यदि उत्तर देना पड़े, तो यही कहना चाहिए कि, "अब मैं अपनी भूल को सुधार लूँगा, मुझे क्षमा कीजिए।" इसमें सचमुच ही जानबूझ कर अपराध करने की कोई स्वीकारोक्ति नहीं। जब वह वयोवृद्ध मनुष्य शान्त हो जाय, तब अपने को जो कुछ शंका हो; उसका विनयपूर्वक समाधान कर लेना चाहिए।

मि० के० जब शान्त हो जाते, तब तुम को उनसे पूछना चाहिए था कि अमरूद सड़े जा रहे थे, इसलिए उनको दे डाला तो इस में क्या हानि हुई?

---

(३०)

चैत्र वदी ७ शुक्रवार।

चि० मणिलाल,

मैं यह नहीं जानता कि दशमी का व्रत न रख कर एकादशी ही क्यों रखते हैं, पर हां, पखवाड़े में कम से कम एक दिन के लिए भोजन छोड़ देने से शरीर और मन शुद्ध रहता है।

---

(३१)

वैशाख वदी ६।

चि० मणिलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने कल ही तुम्हें एक पत्र लिखा

है। तुमने अपनी प्रीटोरिया की यात्रा के विरुद्ध विशेष कारण दिया है। यहां जब से नियम किया गया, कोई भी देर से नहीं उठा, और वहां तो एक सप्ताह भी नियम का पालन नहीं किया गया! अब भी विचार करो। फिर एक बार सूचित करता हूं कि जिस बात का प्रारम्भ करो, विचार-पूर्वक करो; और जिसको आरम्भ कर दो उसको अन्त तक पहुंचाये बिना मत छोड़ो।

इस बार का मेरा उपवास मेरे हाथ से तुम्हारी अन्तिम सेवा है, इससे अधिक शक्ति मुझमें नहीं। जो कुछ समझना हो, उसे समझ कर अपना चरित्र दृढ़ करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। उपवास इत्यादि के झगड़े में पड़ना तुम्हारा काम नहीं।

× × × × ×

---

(३२)

जेठ बदी ८।

चि० मणिलाल,

× × × तुम को जो कुछ करना हो, विचारपूर्वक निर्भयता के साथ, स्वतंत्रता से करो। बापू को क्या पसन्द होगा, इसका विचार पीछे करो। पहले तुम स्वयं, आत्म-कल्याणार्थ जो कुछ करना हो, उसे निश्चित करो, और उसी के अनुसार चलो। यह विश्वास रखो कि, जान बूझ कर अनुचित ढङ्ग से किया हुआ उद्योग निष्फल ही होगा।

---

(२३)

भाद्रपद शु० ६।

चि० मणिलाल,

डेविड की प्रार्थना (बाइबल की) समझ लेने योग्य है। उसमें उसने दुष्टों का नाश करने की इच्छा की है, उसका रहस्य यह है कि उसको दुष्टता सहन नहीं हुई। यही विचार रामायण में हैं। देवता और मनुष्य, दोनों ने राक्षसों का संहार चाहा था। "जय राम रमा०" इत्यादि स्तुति में भी यही भावार्थ है। उसका आध्यात्मिक अर्थ यह है कि, डेविड (अर्जुन दैवी सम्पत्ति) अपने शत्रु (दुर्योधनादि आसुरी सम्पत्ति) का नाश चाहता है। यह सात्विक वृत्ति है और भक्ति-भावना में इसका समावेश होता है। परन्तु जब ज्ञान-दशा प्राप्त होती है, तब दोनों वृत्तियां दब जाती हैं; और केवल शुद्ध भाव — केवल ज्ञान — शेष रह जाता है। इस दशा का वर्णन प्रायः बाइबिल में न मिलेगा। डेविड दोषयुक्त होते हुए भी भक्त था। प्रार्थना में उसके जो वचन हैं, उनकी भाषा सरल है। वह स्वयं महान् था; फिर भी ईश्वर के निकट दीनवत् व्यवहार रख कर वह अपने को तृणवत् मानता है।

---

(२४)

चि० मणिलाल,

मैं उतावलेपन से एक भी क़दम नहीं रखूंगा। विचार आने ही चाहिए। मेरे कार्यों में परिवर्तन होना ही चाहिए।

परन्तु मैं ऐसी कोई वात न करूंगा, जिससे तुम घवड़ा जाओ। निराशा को फटकने न देना तुम्हारा कर्त्तव्य है। दीर्घ प्रयत्न के विना उन्नति नहीं होसकती, परन्तु जहां एक वार उच्च पदवी को पहुंच गये फिर उसकी उज्वलता की सीमा नहीं। साहस वड़ा है; उसको करने के लिए तुम समर्थ हो; क्योंकि प्रत्येक आतमा के गुण समान ही हैं। जो आवरण हैं, उनको निकाल डालो, वस फिर तुमको अपनी निज की शक्ति मालूम हो जायगी। इसकी कुंजी "यम-नियम" है। इस विषय में फिर कभी लिखूंगा। × × × × जो कुछ पढ़ो, उसका खूब मनन करो। विना विचार किये कुछ भी उच्चारण न करो, एक भी अक्षर न लिखो, और न कोई कार्य करो।

---

(२५)

फाल्गुन कृ० ४, १९६६।

चि० न ... ...,

तुम्हारा पत्र मुझे मिला है। वहां रह कर भी यहां की उद्देश्य-सिद्धि में तुम्हारी सहायता होगी। मुझे मालूम होता है कि, वहां भी वहुत झगड़ना पड़ेगा; पर यह करने के लिए तुम्हारा चरित्र वनना चाहिए। क्या तुमने अपने धर्म के मूल तत्त्व समझ लिये हैं?

तुम कहोगे कि, मुझे सम्पूर्ण गीता कण्ठाग्र है, अर्थ भी आता है; फिर यह क्यों पूंछते हो कि, मूल तत्त्व मालूम हैं या नहीं? परन्तु मैं मूल तत्त्वों के जानने का यह अर्थ

समझता हूं कि, तदनुसार आचरण करना। दैवी-सम्पत्ति का पहला गुण "अभय" है। यह श्लोक याद आता ही होगा। किन्तु क्या तुमने कुछ भी अभय-पद प्राप्त किया है? जो उचित है उसे क्या, मृत्यु-पर्य्यन्त, निर्भयतापूर्वक करते रहोगे? जब तक यह स्थिति न प्राप्त हो जाय, बराबर प्रयत्न करते रहो। फिर तुम बहुत कुछ कर सकोगे। इस अवसर पर प्रह्लाद जी, सुधन्वा, इत्यादि के दृष्टान्तों को आंखों के सामने रखना चाहिए। यह न समझना कि ये सिर्फ दन्तकथाएँ हैं। सच तो यह है कि ऐसे ऐसे काम करने वाले भारत माता के पुत्र हो गये हैं, इसी लिए हम उन आख्यानों का पाठ करते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि आज भी प्रह्लाद और सुधन्वा, हरिश्चन्द्र और श्रवण भारतवर्ष में नहीं हैं। हम योग्य बन जायंगे, तब उनकी भेंट होगी। अवश्य ही वे बम्बई के भवनों में नहीं मिलेंगे। चट्टान में गेहूं उपजने की आशा नहीं। बम्बई में यदि रहना हो, तो यह भली भांति समझ लो कि मुम्बापुरी नरकपुरी की खान है, उसमें कुछ तत्त्व नहीं।

स ••• ••• का आशीर्वाद।

---

(३८)

फाल्गुन कृ० ७, १९६६।

तुम्हारा पत्र मिला। उसको इसके साथ लौटाता हूं, जिससे उत्तर ठीक तौर से ध्यान में आ जाय।

तुम ने जो शंकाएं निकाली हैं, उनके निवारण करने का प्रयत्न करता हूं; पर कदाचित् तुम्हारा समाधान न होगा। स्वराज्य-विषयक लेख यदि तुम फिर एक दो बार पढ़ कर देखो तो जो खुलासा तुम को चाहिए, वह कदाचित् उसमें ही तुम को मिल जायगा।

हम ने जितना 'सुधार' करना चाहा है, उतना ही पीछे हम को लौटना पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं और यही कठिन है। पर उसको किये विना और कोई गति नहीं। जब कि हम दूसरे ही मार्ग में लग गये हैं, तब पीछे लौटे विना छुटकारा नहीं हो सकता। जो कुछ हम भोगते आये हैं, उसके विषय में वीतरागी बनना ही ठीक है; पर ऐसा होने के लिए उस भोग के विषय में तिरस्कार उत्पन्न होना चाहिए। जो साधन लाभदायक जान पड़ते हैं, वे छूट नहीं सकते; पर उनमें जितना लाभ दिखाई देता है, उससे हानि ही अधिक है — इस बात का जिस को विश्वास हो जायगा, वह उस को तुरन्त ही त्याग देगा। हम लोगों के पत्र शीघ्र मिलने का सुभीता हो गया, मैं नहीं समझता कि इसमें हम लोगों का लाभ हुआ। जब हम रेलवे इत्यादि साधनों को ही नमस्कार करने के लिए तैयार हो जायँगे, तब केवल इस लिए, कि पत्र शीघ्र पहुंचते हैं, इस प्रलोभन में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं! जिन वस्तुओं में वास्तव में कोई दोष नहीं है, उनका यथोचित उपयोग करने में कोई हानि नहीं। जब तक हम इस सभ्यता के चक्कर में पड़े हैं, तब तक डाक इत्यादि का काम अपने भर के लिए उपयोग कर लेने में कोई हानि नहीं। हां उनका उपयोग समझ बूझ कर करना चाहिए, इससे उनका मोह

उत्पन्न नहीं होगा, और व्यवसाय-सम्बन्धी व्याधियां न बढ़ेंगी, वरन वे कम ही होती जायंगी। यह बात जिसकी समझ में आजायगी, वह उन देहातों में रेलवे अथवा डाक ले जाने का प्रयत्न न करेगा, जहां वे न होंगी। यह सच है कि जहाज़ इत्यादि बातें एकदम नहीं जायंगी, और न कोई उनका त्याग करेगा; परन्तु इस भय से तुम को और मुझ को चुप बैठ कर उनका उपयोग बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि एक मनुष्य उपर्युक्त साधनों का उपयोग कम करेगा, अथवा बन्द कर देगा, तो दूसरा उसका अनुकरण करने लगेगा। दूसरा करे, चाहे न करे, परन्तु जो समझता है कि ऐसा होना चाहिए, वह अपना कर्त्तव्य करता ही रहेगा। सत्य के प्रचार की यही शैली है, इसके अतिरिक्त संसार में और कोई युक्ति ही दिखाई नहीं देती।

पार्लमेंट का मोह दूर होना कठिन काम है। प्राचीन काल में शरीर की खाल छीलते, जलाते, नाक-कान काटते थे। यह जंगलीपन था, परन्तु चंगेज़ ख़ां और तैमूरलंग इत्यादि के अत्याचार की अपेक्षा पार्लमेंट का अत्याचार बड़ा है और हम उसी में चक्कर खा रहे हैं। आधुनिक अत्याचार एक प्रकार का मोहजाल है; और यही अधिक नाश करता है। एक व्यक्ति के अत्याचार का सामना किया जा सकता है, परन्तु जब एक प्रजा के नाम से दूसरी प्रजा पर अत्याचार होता रहता है, तब उसका सामना करना बहुत कठिन होता है। प्राचीन काल की अँधेर नगरियों के अनबूझ राजाओं में भी कोई २ चतुर राजा निकल जाते थे, वैसे ही आज कल की भी दशा है। यदि हम

पर अकेला राजा एडवर्ड राज्य करता होता, तो कोई हानि न थी; परन्तु आज कल तो प्रत्येक अंगरेज़ हमारा और तुम्हारा राजा है। आज कल की इस दशा का पूर्ण विचार करके देखो। इसमें माया मोह का प्रश्न नहीं। भारत की साधारण बुद्धि को पार्लामेंट एक ढकोसला जान पड़ता है, पर जो असाधारण बुद्धि सभ्यता के चक्कर में पड़ी हुई है उसको तो पार्लामेंट से भारी प्रेम है।

तुम कहते हो कि पिंडारी लोगों के आगे दया का क्या काम? परन्तु इससे तो तुमने मानो आत्मा के अस्तित्व पर ही आक्षेप किया, अथवा उसके गुणों को अस्वीकार किया! भगवान पतंजलि ने दया इत्यादि का इतना महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है कि उसके विचार से ही हृदय भर जाता है। वास्तव में बात तो यह है कि हमारे हृदय में भय ने घर कर लिया है, अतएव वहां सत्य, दया, इत्यादि गुणों का विकास नहीं होता, और इसी कारण हम यह निश्चय कर लेते हैं; कि दया आदि गुणों का क्रूर प्राणियों पर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। दया करने वाले पर ही दया करना वास्तव में दयावृत्ति नहीं है; किन्तु यह तो दया का व्यापार है।

हमारी रक्षा चाहे कोई मुफ़्त में करे और चाहे दाम लेकर करे, हम दुर्बल ही कहलायेंगे। यदि पिंडारी इत्यादि लोगों के कष्ट से छूटने के लिए हमको विदेशियों की सहायता लेनी पड़ती है, तो हम सचमुच ही स्वराज्य के लिए योग्य नहीं। यदि शरीर-बल से उनको जीतना है,

तो वह बल हमको स्वयं ही बढ़ाना चाहिए। ऐसी दशा में 'कर' इत्यादि देने की आवश्यकता नहीं। स्त्री पति के द्वारा, अधिकार से अपनी रक्षा चाहती है, परन्तु तभी तो वह 'अबला' कहलाती है।

स्वराज्य उसी के लिए है जो समझता है कि 'स्वराज्य' क्या चीज़ है। हम और तुम आज ही उसका उपभोग कर सकते हैं, परन्तु दूसरों को यह सीखना पड़ेगा कि वह कैसा है? किसी का दिया हुआ राज्य भी परराज्य ही है, चाहे फिर उसका दिलाने वाला भारतीय हो या अंगरेज़।

गोरक्षा-प्रचारिणी-सभा को गो-वध-प्रचारिणी-सभा कहा जाय तो विशेष उपयुक्त होगा क्योंकि उनका उद्देश्य यह होता है कि गौओं को ज़बरदस्ती छुड़ाकर अथवा मुसलमानों को दबा कर उनकी रक्षा की जाय।

द्रव्य देकर गौओं को छुड़ाना कोई सच्ची रक्षा नहीं है। यह तो कसाई को कपट सिखाने का खुला मार्ग है। इसी प्रकार यदि मुसलमानों पर दबाव डाला जायगा। तो वे और अधिक वध करेंगे, परन्तु यदि उनको प्रेम से वशीभूत किया जायगा अथवा उनसे सत्याग्रह किया जायगा, तो वे गौओं की रक्षा करेंगे। यह सब करने के लिए गोरक्षा-प्रचारिणी-सभा की आवश्यकता नहीं। ऐसी सभा हिन्दुओं को हिन्दूपन सिखलाने वाली होनी चाहिये।

बैल को पूरा पूरा चारा न देकर, आरई कोंच कर,

बहुत सा काम कराकर और तरह तरह के कष्ट देकर मारने की अपेक्षा तलवार की एक वार से दो टुकड़े कर देना अधिक अच्छा है। रामचन्द्र और रावण इत्यादि के तत्त्व स्वरूपों का वर्णन करने से बड़ी गड़बड़ी मचेगी। दस मस्तकों और बीस भुजाओं वाला रावण, मेरे विचार से मानवी शरीर में तो हो नहीं सकता, परन्तु हां, यह बात बुद्धि में आती है कि रावण एक महान् विषयी और जड़-पदार्थ था; एवम् श्री रामचन्द्र रूपी चैतन्य ने उसका नाश किया। "मद-मोह-महा-ममता-रजनी तम-पुंज" नाशक दिवाकर की सेना—ऐसा वर्णन तुलसीदास जी ने श्री रामचन्द्र का किया है। मद, मोह और ममता का जब हम में गन्ध भी न रहेगा, तब क्या हम को किसी शरीर का नाश करने के लिए शारीरिक बल की आवश्यकता पड़ेगी? यदि नहीं, तो फिर मद, मोह, ममता रहित पूर्णदया-निधि श्री रामचन्द्र ने रावण का नाश किस प्रकार किया होगा? हम जब रामकी विभूति तक पहुंचेंगे, लक्ष्मण के समान चौदह वर्ष निद्रा का त्याग करेंगे, ब्रह्मचर्य पालेंगे तभी हम को यह मालूम होगा कि शारीरिक बल का उपयोग करना पड़ता है या नहीं।

पद वन्दन से सब कुछ सिद्ध होता है, यह मुझे दिखलाता है। ट्रांसवाल का उदाहरण अच्छा दिया। यह कहने से काम नहीं चलता कि प्रेम है; वरन् उसको कसौटी पर उतारना पड़ता है। इस बात को सोचो कि हरिश्चन्द्र का सत्य, जब तक सत्य नहीं ठहर गया, तब तक उनको कितने संकट भोगने पड़े। सुधन्वा की

भक्ति जब तक सच्ची नहीं सिद्ध हो गई, तब तक उसको क्या क्या सहन करना पड़ा ? हमें यह न समझना चाहिए कि ये सब दन्त-कथाएं हैं। हां, नाम, रूप अन्य हो सकते हैं। कथा लिखनेवाले ने अनुभव लिख रखा है। ट्रांसवाल में भी मेरे समान बड़-बड़ करने वालों की परीक्षा आज हो रही है। उन में अनेक सत्याग्रही कहलाने वाले लोग आज ढोंगी सिद्ध होगये हैं। फिर सच्चा सत्याग्रही किसको माना जाय ? यह तो कहीं लिखा नहीं कि जिन में दया इत्यादि गुण होंगे, उनको दुःख नहीं भोगना पड़ेगा। दुःख है क्या चीज़ ? मन ही बन्ध-मोक्ष का कारण है—ऐसा गीता में लिखा है। सुधन्वा को खौलनेवाले तेल की कड़ाही में डाल दिया था; परन्तु दुःख देनेवाले की दृष्टि से ही उसके लिए वह दुःख था; स्वयं सुधन्वा को तो अपनी भक्ति की महिमा दिखलाने के लिए वह एक बहुत सुन्दर अवसर मिल गया था।

यह सम्भव नहीं कि सब लोग एक ही समय में ग़रीब अथवा अमीर हो जायँ, परन्तु सारासार विचार करने के पश्चात यह ध्यान में आजायगा कि किसानों पर अधिकांश संसार का गुज़ारा है। किसान लोग ग़रीब ही हैं। यदि कोई वकील परमार्थ को बढ़ २ कर बातें मारता है, तो उसे मेहनत-मज़दूरी करके उदर-पोषण करना चाहिए; और विकालत मुफ्त में करनी चाहिए। कदाचित यह बात तुम्हारे ध्यान में शीघ्र न आयेगी कि वकील एक अत्यन्त आलसी प्राणी होता है। मान लो, कोई मनुष्य

सदा ऐसे ही विचारों में मग्न रहता है कि खूब आनन्द करूंगा, खूब मान-सम्मान प्राप्त करूंगा, और खूब धन जमा करूंगा—किन्तु, वह जिस प्रकार बाहरवाले विषयों में ही फिर कर गहरा बहता है, उसी प्रकार विलायत नामी विषय में रमनेवाला शरीर को भी लोभ कर परित्यक्त करता है, और पीछे से भोग-विलास में समय बिताता है। यही बात है। इस में कुछ अतिशयोक्ति होने की सम्भावना है, यह मैं स्वीकार करता हूं, परन्तु डाक्टर, विचार अधिकांश में ठीक है।

वैद्य-पेशा में साधुओं की संख्या क्या कम रहती है? पांच-सात नये हुए और कद, ढ़िना बढ़े, विलायती पाठ पढ़ कर, वे कौन सा अच्छा काम कर सकते हैं? आरोग्य-लोग अच्छे करने की शक्ति से वैद्य को क्या लाभ? हां, उनके शरीर का लोभ ही और अधिक बढ़ता है। रोगों से कैसे बचना चाहिए, रोग न होने देने के लिए कौन से उपायों की योजना करनी चाहिए, यह बात हमको बिना वैद्यक-शास्त्र के अध्ययन के भी मालूम हो सकती है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वैद्य बिलकुल ही न हों—वे हमारे पीछे लगे ही हैं। कहने का मतलब यही है कि, इस व्यवसाय को अधिक महत्त्व देकर अनेक मनुष्य धन और समय का अपव्यय करते हैं, यह अच्छा नहीं। विलायती वैद्यक से तो हम को लेशमात्र भी लाभ नहीं हुआ, और न हो सकता है, यह निश्चित समझिये।

तुम्हारी शंकाओं के उत्तर हो चुके। सम्पूर्ण भारत के

उद्धार का भार बिना कारण सिर पर मत लो। अपना निज का ही उद्धार करो। इतना भार काफ़ी है। सब कुछ अपने व्यक्तित्व पर ही लागू करना चाहिए। हम स्वयं ही भारतवर्ष हैं—बस, यही मानने में आत्मा का बड़प्पन है। तुम्हारा उद्धार ही भारतवर्ष का उद्धार है। शेष सब व्यर्थ है, ढोंग है। तुम में सच्चे आत्म-प्रेम का रस उत्पन्न हो, उसी में तुम डूबे रहो। शेष की चिन्ता तुमको और मुझको करने की कोई आवश्यकता नहीं। दूसरे की चिन्ता करते करते कुछ हाथ न आयेगा। किसी ने ठीक कहा है:—दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम। अस्तु, इसका विचार परमार्थ-दृष्टि से करो, स्वार्थ-दृष्टि से न करो और कुछ पूछने की इच्छा हो तो ज़रूर पूछो।

म ··· का यथायोग्य।

---

(३७)

कार्तिक शुक्ला २, सं १९६८।

चि० म ···,

सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरण, होत जन्म न भरत को।
मुनिमन अगम यम नियम शमदम विषम व्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दम्भ दूषण सुयम मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठहिं हठि राम सन्मुख करत को॥

यह छन्द अयोध्याकांड के अन्त का है। इस पर विचार

मेरे कानों में इसकी ध्वनि अब तक गूंज रही है। कलि-युग में भक्ति को प्रधान पद मिला है। अतएव भक्ति करने के लिए भी यम-नियमादि चाहिए, इस विषय में हमारी शिक्षा-प्रणाली निरुपयोगी है। शमदमादि की शिक्षा के बिना सारी चतुरता व्यर्थ है, मैं इस बात का अनुभव क्षण-क्षण पर कर रहा हूं, तुमको क्या उपदेश दूं?

म … का आशीर्वाद।

---

(३८)

जेठ बदी १४, सं० १९८८।

चि० उ … …,

सर्पदंश पर तुमने कुछ प्रश्न किये हैं, और दूसरे के अनुभव भी बतलाये हैं। मैं इस विषय में जो कुछ लिखूंगा, वो अनुमानिक है, अनुभविक नहीं। तुम को जो उदाहरण मिले हैं, उन पर बहुत कुछ ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। (शरीर में संचार होने से) जो हिलते-डुलते हैं, उसमें शायद कुछ अर्थ हो, पर अधिकांश में विशेषतया ढोंग ही रहता है। सर्प और बिच्छू उतरने के विषय में भी ऐसा ही है। निःसन्देह, इसमें थोड़ा सा तथ्य अवश्य है, परन्तु ऐसा नहीं कि हम उसकी खोज की धुन में लग जावें। हमारी प्रकृति आत्मिक होनी चाहिए। सब कुछ—यहां तक कि आरोग्यता भी—उसी के अधीन है। आत्म-शोध में निमग्न रहनेवाले को सब कुछ आप ही आप मिल जाता है।

बहुत लोग ऊन के कपड़ों का बारहो मास व्यवहार करते हैं, परन्तु; चाहे वे "नान कंडक्टर" भले ही हों, फिर भी गरमी में उनका व्यवहार करना ठीक नहीं, क्योंकि इससे शरीर नाजुक हो जाता है। शरीर को सम-शीतोष्ण रखने के लिए इस प्रकार तैयार करना चाहिए कि वह शीत और उष्ण दोनों का सामना करके विजय प्राप्त करे।

ईश्वर है भी और नहीं भी है। मूल अर्थ से ईश्वर नहीं है। मोक्ष के प्रति पहुंची हुई आत्मा ही ईश्वर है, इसलिए उसको सम्पूर्ण ज्ञान है। भक्ति का सच्चा अर्थ आत्मा का शोध ही है। आत्मा को जब अपनी पहचान हो जाती है, तब भक्ति नहीं रहती, फिर वहाँ ज्ञान प्रकट होता है।

नरसी मेहता इत्यादि ने ऐसी ही आत्मा की भक्ति की। कृष्ण, राम, इत्यादि अवतार थे, परन्तु हम भी अधिक पुण्य से वैसे हो सकते हैं। जो आत्मा मोक्ष के प्रति पहुँचने के लगभग आ जाती है, वही अवतार है। उनके विषय में उसी जन्म में सम्पूर्णता मानने की आवश्यकता नहीं।

कृष्ण, राम, बुद्ध, ईसामसीह, इन सब में कौन बड़ा हुआ, यह बतलाना अत्यन्त कठिन है। सब के कार्य्य भिन्न भिन्न, प्रसंग भिन्न भिन्न और समय भिन्न भिन्न हैं। यदि चरित्र का विचार किया जाय, तो कदाचित बुद्ध का दर्जा ऊपर रहेगा। परन्तु यह भी कैसे कहूं! अपने अपने मन के अनुकूल भक्तों ने उनके वर्णन किये हैं। वैष्णव

कृष्ण को पूर्णावतार मानते हैं, उनको वैसा मानना ही चाहिए; क्योंकि इसके बिना अनन्यभक्ति नहीं होगी। क्रिश्चियन लोग ईसामसीह के विषय में ऐसा ही कहते हैं। भारतवर्ष में कृष्ण अन्त में हुए हैं, अतएव उनकी विशेष महिमा है।

ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास न करने वाले को इधर-उधर भटकना पड़ता है, अन्यथा उसे यह कहना पड़ेगा कि आत्मा भी नहीं है! अवतार की आवश्यकता है और वह सदैव रहेगी। जब लोगों में अत्यन्त निराशा और अनीति फैलती है, तब अवतार हुआ करता है। जिस समय किसी देश में दुष्टों के कारण कुछ साधारण नीति पालन करने वाले लोग अपने हितों की रक्षा चाहते हैं, उस समय जो मनुष्य बलिष्ट और नीतिज्ञ होता है, और जो दुष्टों से दबता नहीं वरन जिसके भय से दुष्ट ही दब जाते हैं, वही मनुष्य (अपने पराक्रम के कारण) जीवितावस्था में अथवा मरने पर अवतार माना जाता है। ऐसे मनुष्य का यह मानना सम्भव नहीं कि हम जन्मतः ही अवतारी हैं।

धर्मों की तुलना करने में कोई लाभ नहीं। यह बात मन में रख कर, कि हमारा धर्म श्रेष्ठ है, दूसरे धर्म की ओर देखना चाहिए। साधारणतया धर्म की तुलना करते हुए दया-धर्म ही की माया रहती है। जिस धर्म में दया को विशेष अवकाश दिया गया है, उसी धर्म को श्रेष्ठ समझना चाहिए।

" दया धर्म का मूल है," इत्यादि वचन सहज सब के

ही समझ में आने योग्य सूत्र है। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या"—यह दूसरा सूत्र है। ऐसा एक भी सूत्र नहीं हो सकता जो सब को समान ही स्वीकार हो। परन्तु मैं समझता हूं कि आत्मार्थी मनुष्य को उचित समय में उचित वचन उपरति के लिए कारण होता है।

जाति-भेद की आवश्यकता है भी, और नहीं भी है। ज़बरदस्ती क़ायम रखे जाने वाले जाति-भेद की बिलकुल ही आवश्यकता नहीं। पेरिया-अस्पृश्य-जाति को उत्तेजन देने में गा ··· ने जो कार्य्य किया, वह स्तुत्य है।

सारांश यह कि जितने मनुष्य हैं, उतने ही धर्म हैं। जब तक मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकृति के हैं, तब तक धर्म भी भिन्न भिन्न रहेंगे। जो मनुष्य अपनी आत्मा और दूसरे की आत्मा को एक रूप समझेगा, उसको धर्म में भी एकता दिखाई देगी।

कहते हैं कि जब आत्मा शरीर-बन्धन से मुक्त होता है, तब वह मोक्ष पाता है। मोक्ष-स्थिति इन्द्रियगम्य नहीं; किन्तु अनुभवगम्य है। भूतादि योनियां दुष्ट योनियां हैं। दुष्कृत्य करने वाले इन योनियों को प्राप्त होते हैं।

दुग्धोपचार-विषयक पुस्तक मैंने देख ली, परन्तु मुझे वह पसन्द नहीं आई। मेरी दशा ही ऐसी है। चाहे कोई यह भले ही सिद्ध करदे कि मांस-भक्षण में शरीर को उत्तम करने की शक्ति है, परन्तु फिर भी वह मेरे लिए त्याज्य है। बस, दूध के विषय में भी ऐसा ही समझिये। मेरा

मत है कि वह भी मांस का ही एक स्वरूप है; इस लिए मनुष्य को उसके खाने का अधिकार नहीं। ऐसा कहना तो अज्ञान की परमावधि है कि छोटा बच्चा मां का दूध पीता है, इसलिए मनुष्य को गौ का दूध पीना चाहिए।

म ··· ··· का आशीर्वाद।

---

(३६)

आषाढ़ शुक्ला ६, सं० १६८६।

चि० ज ··· ···,

मैं अच्छी पाठशाला के विरुद्ध नहीं हूं, परन्तु मेरा मत है कि बहुत से विद्यार्थियों की पाठशाला अच्छी नहीं होती। सच्ची पाठशाला वही है जहां चौबीसों घंटे विद्यार्थी रहते हैं; क्योंकि ऐसी पाठशाला में दुहरी शिक्षा मिलती है।

हमारे सभी शास्त्र विचारपूर्वक और ज्ञानपूर्वक लिखे गये हैं, यह मानने की कोई आवश्यकता नहीं। यह भी एक शास्त्र ही है। हां, यदि ऐसी व्याख्या की जाय कि जिसमें शुद्ध ज्ञान है, वही शास्त्र है, तो अवश्य ही यह कहा जा सकेगा कि शास्त्र ज्ञान-पूर्वक लिखे गये हैं। किन्तु जिनमें नर-यज्ञ इत्यादि बातें हैं, उनको अज्ञानमूलक मानना पड़ेगा। कदाचित् ये बातें शुद्ध शास्त्रों में पीछे से घुसेड़ दी गई होंगी; परन्तु आत्मार्थी मनुष्य को उनके संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं। यह काम इतिहास-संशोधकों का है।

हमको तो प्रत्येक लेख और वचन से सिर्फ सार ले लेना है। सभी शास्त्रों को शास्त्र ही समझ कर और उनके अनर्थ को अर्थ (सत्य) मान कर, उनकी संगति लगाने के झगड़े में हमको क्यों पड़ना चाहिए? चाहे भारतवर्ष हो. चाहे और कोई जगह हो, ज्ञान और अज्ञान दोनों साथ ही साथ चल रहे हैं। इसी लिए धर्म के नाम पर देवी को वलि इत्यादि देने के अन्याय-पूर्ण कार्य हो रहे हैं। वर्तमान समय में हम उनको दूर करने के प्रयत्न में भी नहीं पड़ सकते। इस समय तो आत्मा को पहचानना ही हमारा मुख्य कर्त्तव्य हो रहा है। जब हम इस पाठ को सीख कर तैयार हो जायँगे, तब शेष सब बातों का खुलासा आप ही आप हो जायगा।

यह नितान्त सम्भव है कि विभीषण जो रामचन्द्र महाराज से बिलकुल निःस्वार्थभाव से मिले होंगे। निस्सन्देह, सगे भाई के अपराध भी परमेश्वर से कौन और कैसे छिपा सकता है? इसके अतिरिक्त भाई के अनर्थ टालने के लिए भी प्रभु की सहायता माँगी जा सकती है!

तुमने भागवत का श्लोक उद्धृत किया है; उसका शब्दशः अर्थ करने से काम नहीं चलेगा। कृष्ण की लीला कृष्ण ही जानें। उन्होंने चाहे सकाम होकर ही कर्म किया हो, तथापि हमारे समान जड़-बुद्धि प्राणी वैसा नहीं कर सकते; उनकी प्रभुता उनको वैसा करने की सुविधा देती होगी; परन्तु इससे हम तो वही सुविधा नहीं ले सकते। सच पूछिये तो भागवत के लेखक ने भी अपने ज्ञान के अनु-

सार कृष्ण के विषय में लिखा है: सच्चा कृष्ण किसी को भी मालूम नहीं हुआ।

म ... का आशीर्वाद।

---

(४०)

आषाढ़ वदी १ सं० १९६९।

चि० ज ... ...,

इस विषय में तुमने जो कारण दिये हैं कि हमारे समान लोगों पर अयोग्य भक्षण का प्रभाव तुरन्त ही क्यों पड़ता है, वे कारण ठीक हैं। बुद्धदेव ने भिक्षा में मिले हुए मांस का ज्योंही भक्षण किया, त्योंही उनका देहपात होगया।

पेज़क न्यूटन के आविष्कार के विषय में तुमने जो विचार प्रकट किये हैं, वे ठीक हैं। अभी हाल में प्रख्यात विज्ञान-वेत्ता वो ... ने भी यही विचार प्रकट किये हैं। वे कहते हैं कि इन सब आविष्कारों से लोगों की नीतिमत्ता किसी अंश में भी नहीं बढ़ी। मेरा ख़याल है कि बिना दूध के रहने वाले अनेक लोग होंगे, परन्तु मैं पहले ही कह चुका हूं कि, किसी समय में एक महा-पुरुष ने भारत में मांसाहार बन्द करने के लिए जो उपक्रम किया, वह इतना महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन था कि उसके आगे दूध के विषय में विचार करने वालों अथवा लिखने वालों की धीमी आवाज़ किसी के कान में नहीं

पड़ सकी। इसका कारण हमारा अज्ञान है। हमने संसार का समस्त साहित्य कहां पढ़ा अथवा देखा है? सच तो यह है कि भूतकाल में इसका विचार हुआ हो अथवा न हुआ हो, हम को यह देखना चाहिए कि, यह बात हमारी बुद्धि में आती है या नहीं। इसके सिवाय, दुग्ध-सेवन करना पाप है, यह कोई कहता नहीं।

× × × × ×

म······ का आशीर्वाद।

---

(४१)

फाल्गुन शुक्ला ६, १६६६।

चि० ज······,

ब्राह्मणों का सन्मान करते समय हम को अपनी भावना पवित्र रखनी चाहिए, उन पर आक्षेप न होना चाहिए किसी खानदानी कुटुम्ब के मनुष्य को दरिद्रावस्था में देख कर अवश्य ही उसके विषय में हम को खिन्नता होती है; और मन में आदर-भाव भी पैदा होता है, परन्तु किसी वेश्या-पुत्र के विषय में वैसा नहीं जान पड़ता। मेरे लिखने का यह तात्पर्य नहीं है कि, ब्राह्मणों के दुराचरण का भी अनुमोदन करना चाहिए। वे जिस समय निष्कारण भिक्षा मांगने आते हैं, उस समय यदि तुम अपना अध्ययन छोड़ कर उनको चुटकी भर आटा डालने जाओगे, तो मानों तुम अपने अध्ययन की व्यर्थ हानि करोगे। इस में ब्राह्मणों को मान देने की कोई बात

नहीं, उलटे तुम्हारी भीरुता और अविचार का ही परिचय मिलता है।

मैं पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने के विरुद्ध नहीं हूं, परन्तु वर्तमान पाठशाला का हमारे ऊपर व्यर्थ और अनुचित प्रभाव पड़ता है। मैं उसके विरुद्ध हूं। वर्तमान पाठशालाओं में अध्यापक नीतिज्ञ नहीं होते, यह पहला दोष है। विद्यार्थी शिक्षकों से दूर रहते हैं, यह दूसरा दोष है। अनेक विषयों में व्यर्थ समय जाता है, यह तीसरा दोष है, और ये पाठशालाएं प्रायः हमारी गुलामी का चिन्ह होती हैं, यह चौथा दोष है।

यदि तुम दूध, दही नहीं छोड़ोगे तो कोई हानि नहीं; किन्तु उनको प्रधानता अवश्य ही न देना।

म ··· ··· का आशीर्वाद।

---

(४२)

चि० ज ··· ···,

पवित्र तीर्थ-स्थानों में तेल त्याज्य समझ कर घृत पवित्र माना गया है; इसका जो कारण मैंने अनुमानित किया है, वही ठीक है। भारतवर्ष पहले मांसाहारी था; परन्तु किसी मनुष्य ने जब पहले पहल अनेक लोगों को निर्मांसाहारी बनाया, तब उसने घी को अति पवित्र वस्तु निश्चित किया, बस, तभी से हम लोग अपने खान-पान में घी का बहुत अधिक उपयोग करते हैं। जितना घी

अधिक हो, उतनी ही रसोई उत्तम होती है, इससे बढ़कर पागलपन का विचार और क्या हो सकता है? परन्तु यही विचार सब को पसन्द है, इसलिए पवित्र स्थानों में भी घी को उच्च पद प्राप्त हुआ है। जिसने पहले पहल यह सुधार किया, उसने देखा कि जब लोग अधिक घी खाने लगेंगे, तब मांसाहार की बहुत आवश्यकता न रहेगी। इंगलैंड के शाकाहारी लोग अंडों का व्यवहार इसी उद्देश्य से करते हैं। उनकी रसोई में अंडे के बिना कदाचित ही कोई पदार्थ रहता हो। उन्होंने अंडों को क़रीब क़रीब पवित्र स्थान दिया है।

"स्वाद-जय" करने के विषय में तुम ने जो श्लोक दिया, उसको मैंने देखा, तथापि मेरी की हुई आलोचना अब भी ठीक ही है। एक श्लोक से कुछ अन्तर नहीं पड़ सकता। उस विषय पर विशेष ज़ोर देना चाहिए था। यदि ऐसा किया होता, तो बड़े बड़े वैष्णव-मन्दिरों में प्रत्येक अवसर पर जो मिष्टान्न-भोजन हुआ करता है, वह कदापि जारी न रहता। प्रत्येक तिथि-पर्व के दिन घी गुड़ इत्यादि दान करने की चाल ही न पड़ी होती; और ब्राह्मण-भोजनों का रिवाज भी न पड़ा होता। वर्तमान समय के ऋषियों और साधुओं ने स्वादेन्द्रिय को नहीं जीता; किन्तु उलटे स्वादेन्द्रिय ने ही मानों उन पर विजय प्राप्त कर लिया है; इस सम्बन्ध में जितना लिखा जाय, उतना थोड़ा है। यदि हम किसी का अपमान करने के अभिप्राय से ऐसा कहें तो पापी ठहरें, परन्तु जहां हमारा और दूसरे का कल्याण ही

मुख्य प्रश्न है, वहां चाहे जितना मान्य-पुरुष हो, यदि उसमें अपूर्णता दिखाई दे, तो उसका विचार करना हमारा कर्त्तव्य है।

न...... का आशीर्वाद।

---

(४२)

फाल्गुन वदी ११,
युद्दोन सिंगल।

चि० मणिलाल,

× × × फेरफार बहुत जल्दी कर रहे हो, ऐसा करो जिससे उसमें कुछ स्थायी हो जावे। यदि तुम्हारा जीवन वहाँ नियमित हो गया, तो समझ लो कि बहुत कुछ हो गया। मैं समझता हूं कि मेरे साथ तुम्हारा चलना ठीक होगा।

× × × देश में तुम उच्च-श्रेणी के ब्रह्मचारी बनो, और तुम्हारा आचरण स्वाभाविक ही इतना संयमी हो जिससे दूसरों पर तत्काल उसका प्रभाव पड़े—बस, यही मेरी अभिलाषा है। इसके लिए तुम्हारे भीतर उद्योग-वृत्ति, अभ्यास-वृत्ति और शुद्धवृत्ति आनी चाहिए। जान बूझ कर प्रभाव डालने का प्रयत्न करने से प्रभाव नहीं पड़ेगा। तुम को स्वयं जो पसन्द आये, अर्थात् कर्त्तव्य के तौर पर, स्वयं अपनी पसन्दगी से, पूर्ण विचार के बाद, जो कार्य-क्रम तुम निश्चित करो, उसका आजन्म पालन करना चाहिए।

× × × × ×

(४४)

गुरुवार।

चि० मणिलाल,

× × × जिस पत्र में तुमने पश्चात्ताप दिखलाया है, उसी पत्र में लिखते हो कि, उसी दिन शाक के समान वस्तु तक परोसना भूल गये। यह तो लिखते हो कि परोसना भूल गये, परन्तु यह नहीं लिखते कि कैसे भूल गये ? दोष किसका है ? क्या तुमने यह काम किसी दूसरे को सौंपा था ? प्रेम से बनाया हुआ शाक तुमको स्वयं ही परोसना चाहिए था, अस्तु, इससे भी कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जो होगया, उस पर शोक करने की कोई आवश्यकता नहीं, परन्तु हां, उससे शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता ज़रूर है। इस विषय में कर्त्तव्य-परायण बनो। आत्म-संयम का साधन करो। परन्तु बिना विचार के यह कैसे हो सकेगा ? सब के विषय में आदर-भाव रखो। दूसरों के दोष देखने की अपेक्षा, उनके गुणभर ले लेने चाहिए; और अपने दोष देखने चाहिए। गप्पें मारने में कदापि समय न व्यतीत करना चाहिए, किन्तु सतत विचार करते रहना चाहिए। एक क्षण भी व्यर्थ जाने देना मानों उतना जीवन व्यर्थ ही खोना है और यह ईश्वर की चोरी करना है। यह जान कर प्रत्येक क्षण का अच्छा उपयोग करो। शरीर को खूब कसो।

---

(४५)

चैत्र कृष्णा २, रविवार।

चि० मणिलाल,

× × × मि० कोलनबेक चाहे जब सोते हों, लेकिन तुमको अपना नियम न छोड़ना चाहिए। भोजन का भी वैसा ही नियम रखना चाहिए। जो वाक्य तुम्हारी समझ में नहीं आये, उनका अर्थ इस प्रकार है:—"जो लोग अपने कार्य केवल क़ानून के कारण ही (अर्थात् केवल क़ानून के भय से—मन से नहीं) करते हैं, उनको तो शाप है ही; बल्कि ऐसा भी लिखा है कि जो क़ानून में कहे अनुसार काम नहीं करते (अर्थात् उसके अनुसार नहीं चलते) वे तो पूर्णतया शापित हैं" (बायबल)। भावार्थ यह है कि केवल पढ़ लिख लेन से ही कहीं मोक्ष मिलने का उदाहरण नहीं मिलता। गीता में भी ऐसा ही वाक्य है, श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि, "त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।" इसका यह अर्थ नहीं कि शास्त्रविहित कर्म करना ही न चाहिए। उन कर्मों को तो करना ही चाहिए, परन्तु वहीं न ठहरते हुए उनका गूढ़ अर्थ समझ कर—उनका मूल हेतु पहचान कर—अधिक उन्नत होना चाहिए, यही उसका अर्थ है। जो मनुष्य विहित कर्मों का त्याग कर के शुष्क ब्रह्मवादी बनेगा, वह तो "इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः" हो जायगा। वह ऐसी ही स्थिति में पड़ जायगा कि इधर उसका शास्त्र का आश्रय भी चला जायगा, और उधर ज्ञान की नींव भी न पड़ेगी। इसी लिए सेंटपाल ने गेलेशियन्स से कहा था:—"चाहे तुम लोग शास्त्रानुसार कर्म भले ही करो,

परन्तु यदि तुम ईसामसीह पर श्रद्धा रख कर, उनके उपदेश के अनुसार, न करोगे, तो शापित रहोगे।" यही अर्थ "बाँड मेड" और "फ्री वूमन" में है। बाँड का अर्थ है बन्धन। इसमें शास्त्र को स्थूल माता की उपमा देकर दिखलाया है कि "बाँड-मेड" यह परतंत्र-गुलाम की श्रेणी की है, अतएव उसकी प्रजा भी गुलाम ही होगी!

श्रद्धा का अर्थ है भक्ति, इसके लिए दिव्य माता की उपमा दी गई है। दिव्य माता की प्रजा देवरूप होती है। ऐसा भावार्थ लगा कर, आगे पीछे की संगति देख कर, तब देखो कि तुम्हारी समझ में आता है या नहीं। इस के बाद फिर मुझको लिखो। पहले कोरिन्थियन के पन्द्रहवें प्रकरण के छप्पनवें श्लोक का अर्थ यह है कि, पाप ही मृत्यु का दंश है, अर्थात् पापी मनुष्य को मृत्यु-दंश का कष्ट होता है। अगले वाक्य का अर्थ यह है कि पुण्यशील के लिए वही मोक्ष-साधन होता है, और शास्त्र के पोले ज्ञान में शाप भरा रहता है। पद पद पर यही हमारे अनुभव में आता है। शास्त्र के नाम पर सैकड़ों पाप होते हैं। पांचवें रोमन्स के बीसवें श्लोक का अर्थ तो सरल है। "ज्यों ज्यों शास्त्रीपन बढ़ा, त्यों त्यों अपराध भी बढ़े, परन्तु जब जब पाप का पहाड़ बढ़ा, तब तब ईश्वरीय-कृपा भी बढ़ी। सारांश यह है कि, इस कलिकाल में भी शुष्क-ज्ञान के चक्कर से बच कर ऐसे मनुष्य निकले, जिन्होंने भक्ति-मार्ग दर्शन कर के शास्त्र का गूढ़ार्थ सिखलाया। यह ईश्वर की दया है। जान के पन्द्रहवें प्रकरण के तीसरे श्लोक का अर्थ इस प्रकार है:—"जो कुछ मैंने तुम से बतलाया है, यदि तुम उसके अनुसार चलोगे,

तो विशुद्ध हो जाओगे। Are यह भविष्यवाचक समझना चाहिए, और Through का अर्थ "अनुसार चलने से" करना चाहिए।

जीवन में सुधार सम्बन्धी फेरफार करने के पहले भली-भांति विचार करो, परन्तु जब एक बार फेरफार कर लो, तब फिर उसमें जोंक की तरह चिपटे रहो। मि० के० के गुणों पर लुब्ध होना ठीक है, पर जहां कहीं उनकी कमज़ोरी दिखाई दे, वहां उसको समझ कर उससे दूर रहो। तुमने जो नवीन फेरफार किया है, वह विचारपूर्वक नहीं हुआ। यह नहीं कि मि० के० जो कुछ करें, वह तुमको भी करना ही चाहिए। तुमको स्वतंत्रतापूर्वक विचारना और उसके अनुसार आचरण करना चाहिए। ऐसा करने में कितने ही बार भूल भी होगी, परन्तु इसके लिए कोई उपाय नहीं। निर्मल-चित्त से पूर्ण विचार कर लेने के बाद, मेरे विचारों के भी विरोध करने का तुमको अधिकार है, और नीति की दृष्टि से जहां जो बात उचित दिखाई दे, वहां पर वैसा ही करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मेरी यही प्रबल इच्छा है कि तुम मोक्ष का तत्त्व समझ कर मोक्षार्थी बनो; पर जब तक तुममें स्वतंत्र विचार-शक्ति और हृदय की दृढ़ता न आ जावे, मेरी आशा सफल नहीं हो सकती। इस समय तुम्हारी दशा बेल के समान है। बेल जिस वृक्ष पर चढ़ती है, उसी के समान उसका स्वरूप बनता है। परन्तु आत्मा की ऐसी गति नहीं है, आत्मा स्वतंत्र और सर्व-शक्तिमान है।

---

(४६)

केप-टाउन,

भाई श्री……, माघ वदी १२।

आप का पत्र मिला। चि० म० …को वहां भेजने का विचार नहीं। उसको यहां के वैभव से छुड़ाया है … ऐसे ही कारणों से चि० ज … को वहां भेजा है …। जिसको ब्रह्मचर्य पालन करना है, उसको पुष्टिमार्गी वैष्णवों की संगति में न रहना चाहिए। यही मेरा मत है। जान पड़ता है कि, 'बा' की तबीअत अब अच्छी है। वहां लड़के उद्योगशील बनें, और शीघ्र उठने में कुछ भी कसर न करें, इस विषय में कड़ी दृष्टि रखिये। म … की तबीअत कैसी है? सब बातो का खुलासा उत्तर दीजिए। ऐसा प्रयत्न कीजिए कि साहब की पत्नी को किसी तरह का संकोच न होने पावे। उनको यदि विशेष प्रकार के खान-पान की आवश्यकता हो, तो आप उसकी व्यवस्था करें, अथवा स्वयं उन्हीं को कर लेने दें, यही अच्छा होगा।

मि० एेन्ड्र्यूज़ ने सचमुच ही बड़ा काम किया।

---

(४७)

माघ वदी अमावस्या,

केप-टाउन।

भाई श्री … …,

आप का जे … के विषय का पत्र डा … के पास

भेज दिया है, और म ··· का पत्र पढ़कर फाड़ डाला है। मैंने समझा कि यदि आप का पत्र उसे मिलेगा, तो उस पर उलटा प्रभाव पड़ेगा। अब ऐसा मालूम पड़ता है कि वही विचार आप फिर उसको बतलावें। मेरा मन तो उसके विषय में बहुत ही ख़राब हो गया है। आपने उसका जो चित्र अंकित किया था, मुझे वह उससे भी अधिक बुरा दिखाई देता है। यदि उसने आपका पत्र देखा होता, तो वह चिढ़ जाता; और अधिक पाप करता। वह पत्र उसके पास भेजें या नहीं, इसका विचार करते हुए अन्त में ऐसा ही करना निश्चित किया।

यह भली भांति जान लेना चाहिए कि, जिन पर हमारी श्रद्धा है, यदि हम उनसे कुछ भी छिपावें, अथवा जो बात हममें नहीं है, वह है—ऐसा उनसे दर्शावें, तो हमारा कल्याण कभी न होगा। इसी कारण ··· और ··· का पाप भयंकर हुआ। अपनी इस महान दाम्भिकता के कारण ही वे ऐसा घोर कर्म कर सके। यदि वास्तव में ही धोखा देने का भाव उनमें न होता, तो आवेश में पशु-तुल्य बन जाने के बाद तुरन्त ही मनुष्यता का ज्ञान उनमें आ गया होता, और विषय त्याग कर देते। इस समय (पहिला) रास्ते पर आ गया है, और जान पड़ता है कि (दूसरा) मोह-जाल और दम्भ में ही पड़ा हुआ है।

---

(४८)

केप-टाउन, फाल्गुन, शुक्ला ८।

भाई श्री ……,

आप का पत्र मिला। नेपाल आखिर चला ही गया। उसकी स्त्री को अब अपना हृदय मज़बूत कर लेना चाहिए। मृत्यु के कारण हमको अपने कर्त्तव्य का विचार करना चाहिए, और देह के विषय में प्रायः तिरस्कार करना चाहिए। मृत्यु से डरने की कोई आवश्यकता नहीं। यह देखा गया है कि जब मनुष्य जल कर मरता है, तब भी उसे बहुत अधिक दुःख सहना नहीं पड़ता। दुःख का अतिरेक हो जाने पर मूर्छा आ जाती है। जो लोग देह पर अधिक मोह करते हैं, उन्हीं को मरते समय दुःख भी अधिक होता है। आत्म-तत्त्व जानने वाला मरने से कभी नहीं डरता। नेपाल की भांति इस समय क्षण-क्षण पर हज़ारों मनुष्य,—हज़ारों जीव—जलकर मर रहे हैं। अखिल-ब्रह्माण्ड में नेपाल एक चींटी से भी छोटा प्राणी था। हम जान-अनजान में, आग जलाते समय, रात को दीपक जलाने में, नेपाल से भी बड़े न जाने कितने जीव-जन्तु जला डालते हैं! मान लो कि ब्रह्मा एक बड़ा भारी जीव है, अब उसकी दृष्टि में हम चींटी से भी छोटे जीव ठहरे। उसके नेत्र की परिधि ही इतनी बड़ी होगी कि हम एक क्षुद्र मशक के तुल्य उसको दिखाई देंगे! उस महाजीव ने नेपाल को जला दिया, तो इसमें कौन सी बड़ी बात होगई? कदाचित् उसने यह भी समझा होगा कि अपने सुख के लिए नेपाल के समान क्षुद्र जीव को जीवित

जलाना ही चाहिए । नेपाल हमको अपनेही समान एक जीव मालूम होता है, इस कारण उसके कष्ट देख कर इस भय से हमको उसके विषय में दया मालूम होती है कि, हमारी भी ऐसी ही दुर्दशा होगी; परन्तु चींटी, खटमल, मच्छड़ और ऐसे ही अनेक जन्तु जो हमारी आँखों को दिखाई भी नहीं पड़ते, उनके विषय में जो बुद्धिवाद हम लड़ाते हैं, वही बुद्धिवाद हमसे महान श्रेष्ठ ब्रह्मदेव भी हमारे विषय में करता होगा । इतना जब हमारे ध्यान में भलीभांति आ जायगा, तब नेपाल पर आये हुए प्रसंग से हम यह शिक्षा ग्रहण करेंगे—

१—अपने ऊपर दया कर के, सब जीवों को समान समझ कर, उन पर भी दया करनी चाहिए; और अपने किसी सुख के लिए भी जीव-हिंसा कदापि न करनी चाहिए ।

२—शरीर पर अवास्तविक प्रेम न करना चाहिए; और मृत्यु का तनिक भी भय न करना चाहिये ।

३—शरीर अत्यन्त दग़ाबाज़ है, यह सोच कर इसी क्षण मोक्ष-सामग्री तैयार कर रखनी चाहिए ।

ये तीनों सूत्र कहने में बहुत सरल हैं; परन्तु इनका मन में आना कठिन है; और मन में आने पर भी उनके अनुसार आचरण करना तो मानों तलवार की धार पर ही नाचना है ।

अब प्रातःकाल का समय है; और मेरे विचारों का

प्रवाह उपर्युक्त रीति से ही बह रहा है; क्योंकि 'बा' को आजकल फिर कष्ट हो रहा है। उसको मृत्यु-भय से विमुक्त करने का मेरा प्रयत्न जारी है।

---

(४८)

केप टाउन, फाल्गुन वदी २।

भाई श्री ... ...,

आपका पत्र बारम्बार पढ़ा। शंकराचार्य का एक श्लोक है, उसमें यह है कि समुद्रतीर बैठकर, एक तिनके से पानी की एक एक बूँद निकालते हुए, सारा समुद्र ख़ाली करडालनेवाले मनुष्य को जितने धैर्य और जितने काल की आवश्यकता है, उससे भी अधिक धैर्य और अधिक समय की आवश्यकता मन मारने अर्थात् मोक्ष साधने में होती है। आप तो बहुत उतावले दिखाई पड़ते हैं। मैंने इतना विचार किया है; परन्तु मेरा भी मृत्यु-भय अभी तक नष्ट नहीं हुआ है; फिर भी मैं अधीर नहीं हुआ हूं। मेरा प्रयत्न जारी है, इसलिए कभी न कभी मुक्त अवश्य होऊंगा। तुम भी प्रयत्न करने का कोई अवसर न जाने दो। यह हमारा कर्त्तव्य है। फल देना अथवा उसकी इच्छा करना ईश्वराधीन है, फिर हमको क्या चिन्ता? मां बच्चे को दूध पिलाते हुए परिणाम का विचार नहीं करती। उसका यथोचित परिणाम होता ही है। बस, मृत्यु-भय को टालने—मनोविकारों को दूर भगाने—के लिए ऐसा ही प्रयत्न करो और प्रफुल्लित रहो। इससे सब काम हो जायगा! अन्यथा बन्दर का विचार न करने के विषय में विचार करते करते

जैसे मनही बन्दरमय हो जाता है, वैसा ही हाल होगा। हमने पाप-योनि से जन्म पाया, पाप-कर्म के कारण देहाधीन हुए; अस्तु; यह सब मल आप एक क्षण में कैसे धो सकते हैं?

"सुतर आवे तेम तूं रहे,
जेम तेम करीने हरिने लहे।" *

यह उपदेश अखा भगत ने किया है। तुलसीदास जी कहते हैं, "संकट हो या न हो; परन्तु राम नाम जपो, इससे सब कुछ सिद्ध होता है।" हमको भी यही अर्थ सिद्ध करना है; इसलिए यही जप निरन्तर जारी रखो। 'राम' कौन सा है, यह मन से निश्चित कर लो। राम, निरंजन है, निराकार है। वह राक्षसी-वृत्ति-समूह रूपी रावण का, दैवी-वृत्ति रूपी अनेक प्रकार के शस्त्रों के द्वारा, संहार करने वाला है, यह सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए बारह वर्ष तपस्या करने वाला है। सारांश यह है कि शरीर और मन को एक क्षण भी निरुद्योगी न रहने दो। दोनों को उत्साहपूर्वक काम में लगाये रहो। इससे तुम्हारी उपाधियां निश्चय ही नाश हो जायँगी। शेष, आनन्दपूर्वक परमेश्वर पर भरोसा रखो। "मुझ पर ईश्वर की कृपा है"—इस विश्वास का उपयोग, उपर्युक्त प्रकार से प्रत्यक्ष आचरण करने पर ही होगा।

*"चरखे के अनुसार जैसे सूत निकलता है, वैसे ही तू भी कर्मरूपी चरखे के अधीन है। जिस प्रकार हो सके, परमात्मा को प्राप्त कर।" गुजरात में 'अखा' नामक एक साधु हो गये हैं, जो जात के सुनार थे। उन्हों ने कविता में अन्य प्राचीन साधुकवियों की तरह, वेदान्त का सरल उपदेश किया है। —सं०

यह ध्यान रखना चाहिए कि हम जैसा माँगेंगे, वैसा ही परमात्मा मिलेगा। तुलसीदास ने रामचन्द्र को मांगा, इसलिए श्रीकृष्ण राम होगये; और लक्ष्मी को सीता बनना पड़ा। म ··· की खांसी अच्छी करो। कारण ढूंढ़ो।

---

(५०)

फाल्गुन शुक्ला ८, १९७० ।

चि० दे० ··· ···,

तुम अक्षर सुधारो ··· ··· की तबीअत इस समय बहुत ख़राब हो गई है। उसको और मुझे — दोनों को — विश्वास है कि डाक्टरी औषधियों का ही उस पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। उसी की इच्छा थी कि डाक्टर की औषधि ली जाय, परन्तु दो ही तीन प्याले लेने के बाद बीमारी खूब बढ़ गई है। अब कुछ भी खाया नहीं जाता। कल कुछ अंगूर लिये, पर जान पड़ता है, वे भी लाभकारी न हुए। अन्त में उसने निश्चय कर लिया है कि चाहे मृत्यु भी हो जाय, तो भी वह उससे न डरेगी। इसलिए चिन्ता करने का कोई कारण ही नहीं। शरीर एक ऐसी वस्तु है, जो जाने ही वाला है और जिस दिन जाना होगा, उसी दिन वह जायगा। इसी हिसाब से हम को उपाय भी सूझते हैं। परन्तु आत्मा अमर है। हम चाहे शरीर का सम्बन्ध ही दृढ़ मानते रहें, पर वास्तविक सम्बन्ध तो आत्मा के साथ रहता है। जब शरीर से जीव निकल जाता है, तब हम उसको ज़रा देर भी नहीं रखते, यह निश्चय है। यह जान कर

प्रकार के शरीरों की प्राप्ति से और उनके कारण होने वाले क्लेशों से मुक्त होना। तथापि यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ईश्वर नहीं है। ईश्वर का सच्चा अर्थ हम अपने मर्यादित ज्ञान से करते हैं। फल देने वाला और कर्त्ता वास्तव में ईश्वर नहीं! किन्तु देहधारी आत्माओं के मुक्त हो जाने के बाद यदि अन्य किसी भिन्न आत्मा की कल्पना की जा सके, तो वही ईश्वर है। वह जड़ वस्तु नहीं, शुद्ध चैतन्य है। अद्वैतवादियों का यही कथन है। राजा के समान ईश्वर की किसी काल में और किसी प्रसंग में भी आवश्यकता नहीं। ऐसी आवश्यकता का स्वीकार करना मानों आत्मा की शक्ति को मर्यादित करना है।

प्रश्न २—मैं गौ को नहीं मारता, कभी नहीं मारा, कष्ट नहीं देता, मार्ग में रोकता नहीं, फिर भी यदि वह मुझे मारने आवे, तो क्या करना चाहिए; और क्यों?

उत्तर—गाय जो मारने को दौड़ती है, इसमें हमारा दोष यह है कि हम गाय और अन्य जीवों से डरते हैं। भय एक दोष है; और जब तक हम में भय है तब तक ऐसी उपाधियां आती ही रहेंगी। जब तक हमको गौ का भय मालूम होता रहे, तब तक उसके सामने न जाना चाहिए, और यदि जावें, तो मार खाना चाहिए। गौ को (बदले में) मारने से हमारा अथवा उसका कुछ भी लाभ नहीं!

प्रश्न ३—यदि कोई मनुष्य निर्भयता से व्याघ्र की गुफा में चला जाय तो व्याघ्र उसको मारेगा या नहीं?

दिन न जाना मानों 'बा' की मृत्यु ही है। इसी भय से इस समय इस विचार को दूर कर दिया, परन्तु फिर सोचा कि जे ··· को .फी ··· जाना ही चाहिए। वहां जाकर रहना ही उसका मुख्य धर्म है। यहां रहने में उसका कल्याण नहीं। × × × मुझ में क्या है—यही मालूम नहीं होता। मुझ में इतनी निर्दयता है, जैसा कि कई लोग कहते हैं, दूसरा मनुष्य मेरी प्रसन्नता सम्पादन करने के लिए जी-जान तोड़ कर काम करता है; और असम्भव कार्य भी करने का प्रयत्न करता है; और जब यह देखता है कि उसका होना शक्ति के बाहर है, तब अन्त में कृत्रिमता धारण कर के भी मुझे भुलाता है। श्री० गोखले ने भी मुझ से अनेक बार ऐसा ही कहा कि, " तू ऐसा कठोर है कि दूसरे को घबड़ा डालता है; और यह मनुष्य बेचारा भय से अथवा मेरी प्रसन्नता सम्पादन करने के लिए जी-जान तोड़ कर मेहनत करता है, और अन्त में निर्बल मनुष्य कृत्रिमता धारण करता है। तू लोगों पर असह्य बोझ लादता है। मैं स्वयं भी तेरा काम, जी तोड़ कर कर रहा हूं। यद्यपि वह मेरी शक्ति से बाहर है। "

---

(५३)

वैशाख वदी १४, १९७० ।

[महात्मा जी ने पन्द्रह दिन उपवास करने के बाद, सातवें दिन प्रार्थना कर चुकने पर सब को सम्बोधन करके कहा.]

× × × तुमने गीता के श्लोक कण्ठाग्र करके सुनाये; परन्तु मैं इससे खुश नहीं हूंगा। तुम इतिहास पढ़ो चाहे न पढ़ो, गणित हल करो चाहे न करो, संस्कृत सीखो चाहे न सीखो, इसकी मुझे बिलकुल चिन्ता नहीं, परन्तु हां; संयम-वृत्ति धारण करना तुम्हारे लिए अत्यन्त आवश्यक है। बस यही मुझे चाहिए। यदि समय आजायगा तो मैं मनुष्य का गुलाम बन जाऊंगा; परन्तु मन का गुलाम कभी नहीं बनूंगा। मन का गुलाम बनने के बराबर घोर पाप दूसरा कोई नहीं है, इसलिए तुम होशियार बनो, और मन को क़ाबू में रखना सीखो। बस, इसी दशा में तुम मेरे पास रह सकते हो, अन्यथा मुझे किसी की आवश्यकता नहीं। मैं तुम को सिखाने का भी अभिमान नहीं रखता। मेरे पास एक ऐसा शिष्य है जिसे सिखाना कठिन से कठिन कार्य है। उसको शिक्षा देकर ही मैं तुम्हारा, भारत माता, अथवा अखिल मानव-जाति का कल्याण कर सकूंगा। वह शिष्य मैं स्वयं ही हूं; उसको मैं "मन" कह कर पुकारता हूं। इस रीति से जो अपने आप को स्वयं शिष्य बनावेंगे, वही यहां रहने योग्य हैं। जिनको यह कठिन मालूम होता हो, उनका यहां न रहना ही अच्छा! वे यदि यहां से चले जायँगे, तो मैं यही कहूंगा कि अच्छा किया। स्वयं न समझते हुए (केवल यंत्र की भांति) काम करना पाप है। मैं यह नहीं चाहता।

---

(५४)

भाई श्री रा० ... ...,

तुम्हारा पत्र मिला। पहिला पत्र भी पहुंचा था; पर कोई बात नहीं थी, इसलिए उत्तर नहीं लिखा।

... ... के रंग पलटे सो ठीक है। जहां एकीकरण का प्रयत्न हो रहा है, वहां एकता होने के पहले भिन्न भिन्न रंग दिखाई देने ही चाहिए। साधारणतः शक्कर स्वच्छ दिखाई देती है; परन्तु जब स्वच्छ करने को बैठते हैं, तब उसमें इतना मैल निकलता है जो देखा नहीं जाता। इससे यह मालूम होता है कि शक्कर को जितना शुद्ध हम समझते हैं, उतनी वह नहीं होती; और स्वच्छ होने के पहले वह बहुत ही मलयुक्त रहती है। ज... ... के प्रयत्नों के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए।

चि० आ...... इस समय जो दुःख भोग रहा है; और भा० प...... जिस कठिनाई में व्याकुल है, उससे दोनों ही को सुख और सुविधा प्राप्त होगी।

---

(५५)

रविवार।

भाई श्री० रा० ... ...,

जान पड़ता है, आप पिछले जन्म के मेरे ऋणी हैं, अन्यथा मेरा ऐसा कौन सा अधिकार है जो आप मुझ पर इतना प्रेम करते? कल जब मैं ऐसे ही संकट

में पड़ गया, तब आपने जो प्रेम-भाव मुझ पर दिखलाया वह अकथनीय था। इससे मैं यह इच्छा करता हूं कि आप दोनों ही की आत्मा अधिक तेजस्वी हो; और ऐसे प्रेम के अनुभव से आप यह इच्छा करते रहें कि आत्मा की शक्ति के विषय में मेरा विश्वास अधिक दृढ़ हो। एक क्षुद्र प्रतिज्ञा अथवा एक साधारण सी तपस्या के विषय में उत्पन्न होनेवाला आदर जब इतना कर सकता है, तब सम्पूर्ण तपश्चर्या से कितना विलक्षण कार्य हो सकेगा, उसका अनुमान ही नहीं किया जा सकता — यह साधारण त्रैराशिक का उत्तर आता है; और सच पूछिये तो है भी ऐसा ही। यह प्रतिज्ञा यदि न की होती, तो शुद्ध प्रेम का अनुभव मुझे न प्राप्त हुआ होता; और यह भी न होता कि सच्ची बात तत्काल बाहर निकल आती, और बेचारे बच्चे निर्दोष ठहरते — मैंने चि० × × × को जिस ऊंचे दर्जे पर समझ रखा था, उससे उसको नीचे आना पड़ा, तथापि वह पुण्यात्मा है, यह अभी मेरा विश्वास बना है। उसमें सद्गुण बहुत हैं, उनको बढ़ाना हमारा कर्त्तव्य है। निःसन्देह उसका पाप और काम तो भयंकर था, परन्तु हमें ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे उसे स्मरण न हो। उस को गृहस्थी के कामों में प्रवीण होने के लिए उत्तेजना दीजिए। ऐसा प्रबन्ध कीजिए जिससे बच्चे उसका अपमान न करें। ... ... रात को पोथी-पुराण का बांचना जारी रखिये। बच्चों को सुबह पांच बजे उठाने का दायित्व रा० ... ... पर है। ... ...म... ... की तबीअत के विषय में नियमितरूप से खबर मिलती रहनी चाहिए।

(५६)

पौष बदी १०, सं० १९७०, बुधवार,
प्रीटोरिया।

भाई श्री रा ......,

आज ही मि० एँड्रयूज़ के साथ जो० व० को जाने का विचार किया था, वह नहीं हो सका। जनरल स्मट्स् ने मेरे पत्र का जो उत्तर भेजा है, वह सन्तोष-जनक नहीं है। यदि हो सका, तो उसमें सुधार कर लेने की आशा है और इसलिए कल रहने वाला हूं। यदि सन्तोषजनक उत्तर मिल जायगा, तो भी यह न समझना चाहिए कि झगड़ा मिट जायगा। हां, यह होगा कि उससे बहुत कुछ उन्नति की सम्भावना होगी। सब बातें विस्तारपूर्वक लिखने के लिए समय नहीं है, क्योंकि अभी सर बेंजमिन से मिलने जारहा हूँ।

म ... का रोग नहीं हटता, इसका मुझे आश्चर्य मालूम होता है। कम से कम उसके रोग की चेष्टाएँ देखने के लिए ही फिनिक्स में शान्ति के साथ रहने की इच्छा होती है। जो कुछ हो सके, करो। यदि जनरल स्मट्स् का सन्तोषजनक उत्तर मिला, तो कुछ न कुछ विश्राम मिलने की सम्भावना है। बच्चे फिर नियमित रूप से हो जायँ, इसका पूर्ण ध्यान रखिये।

७, ग्युइटेन सिंगल,
मंगलवार १० — ३ — १६१४।

मुझ पर सब से बड़ा प्रसंग आ पड़ा है। मैं समझता हूं, मेरे भाई मेरे विषय में अन्तिम क्षण तक विचार करते करते अन्त में कल स्वर्गवासी हुए! उनको मुझसे मिलने की बड़ी उत्कट इच्छा थी; और मैं भी इस बात के लिए आतुर हो रहा था कि कब एक बार भारतवर्ष पहुंचूँ, उनके पैरों पर मस्तक रखूँ; और उनकी सेवा करूं। इसके लिए मैं अपना काम भी जल्दी २ समाप्त कर रहा था; परन्तु होनहार कुछ दूसरा ही था! अब मुझे विधवाओं के कुटुम्ब में जाने की नौबत आयेगी; और विधवा भी कैसी? जो मुझ पर ही अवलम्बित रहनेवाली! भारतवर्ष की कौटुम्बिक व्यवस्थाप्रणाली आपको मालूम नहीं है, अतएव आपको इस प्रसंग की कल्पना नहीं होगी। किसी न किसी प्रकार भारतभूमि को एक बार वापस जाने की इच्छा दिन प्रति दिन प्रबल हो रही है। पर क्या कहूं? मेरी यह इच्छा सफल होगी, अथवा नहीं, इस विषय में मुझे भी शंका ही है। तथापि, इस यात्रा की मुझे तैयारी करनी चाहिए और जो कुछ परिणाम हो, उसे शान्त-चित्त से उस सर्वशक्तिमान प्रभु को सौंपना चाहिए!

ऐसे आघातों से मनुष्य में मृत्यु के विषय में अधिक निर्भयता आती रहती है। यदि मेरे हृदय में इस अवसर पर किसी प्रकार की हलचल मचे तो यह समझना चाहिए

कि ऐसे शोक में स्वार्थ की छाया है। क्योंकि जब मैं मरने को सदैव तत्पर हूं; और मृत्यु आना एक बहुत बड़ा सौभाग्य मानता हूं, तो फिर मेरे भाई का मरना मेरे लिए कुछ आपत्तिजनक नहीं है। हमको मृत्यु से भय मालूम होता है; इसीलिए हम दूसरे की मृत्यु पर रोते हैं। शरीर नाशमान है और आत्मा अमर है। जब इसका नाश हो गया तब शरीर और आत्मा के विभक्त हो जाने पर मुझे शोक क्यों करना चाहिये? परन्तु इस सुन्दर और आश्वासन-युक्त सिद्धान्त में जब सच्ची श्रद्धा होगी, तभी यह साम्य-स्थिति प्राप्त होगी। इसमें जिसकी श्रद्धा है, उसको शरीर का मोह न करना चाहिए, बल्कि शरीर का नियन्ता बनना चाहिए। उसको अपनी आवश्यकताएं इतनी ही रखनी चाहिए जिससे देह देही पर अधिकार न चलाते हुए उसके वश में रहे। दूसरे की मृत्यु के लिए शोक करना मानो एक प्रकार से शाश्वत शोक की दशा में फँसने के समान है, क्योंकि शरीर और आत्मा का सम्बन्ध एक शोकप्रद बात है। इस समय मुझ पर इन्हीं विचारों का साम्राज्य छाया हुआ है। इस समय इस विषय में मुझसे दूसरा पत्र लिखा नहीं जाता। यही किसी न किसी तरह लिख दिया। इसलिए मि० पोलक को भी यही पत्र पहुंचा दीजिए; और म ··· को भी इसे पढ़ने को दे दीजिए। इसके बाद मि० वेस्ट इत्यादि लोगों के पढ़ने के लिए छ ··· के पास भी भेज दीजिए।

---

(५८)

केप टाउन।
बुधवार, जेठ बदी २।

भाई श्री० ... ...,

जब श्रीरामचन्द्र वन को जाने लगे, तब राजा दशरथ ने उनसे कहा कि कैकेयी को जो वचन दिया गया है, उस की चिन्ता नहीं। वचन भंग हो जाय, तो भी कोई हानि नहीं, परन्तु तुम वन को न जाओ। इस लौकिक और स्थूल पुत्र-प्रेम से उत्पन्न होनेवाली पिता की इच्छा का अनादर करके भी रामचन्द्र जी वन को चले गये। इस प्रकार सच्ची पितृ-भक्ति प्रकट करके उन्होंने दशरथ का और अपना भी नाम अमर कर लिया। हरिश्चन्द्र ने अपनी धर्मपत्नी को बेच कर, पुत्र रोहिताश्व के गले पर तलवार रखने तक की भी तैयारी कर के, स्त्री-भक्ति और पुत्र-वात्सल्य दिखलाया। प्रह्लाद ने पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर के पितृ-भक्ति प्रकट की; और उसका उद्धार किया। मीराबाई ने राना कुम्भा का त्याग करके स्वयं उसको ही अपना भक्त बनाया। दयानन्द ने अपने माता-पिता को छोड़ कर, विवाह करने से विरत होकर, पीछे लगे हुए लोगों से बच कर मातृ-भक्ति और पितृ-भक्ति क़ायम रखी। अपनी युवती स्त्री को निद्रा-वस्था में छोड़ कर बुद्ध देव चलते बने।

ऐसे अनेक उदाहरण हमको मिलेंगे। उनका चिन्तन करके यदि उनके समान प्रसंग आ जाय, तो स्वयं अपने आप अन्तर्विचार करके सत्य नीति की दृष्टि से उस समय जो उचित दिखाई दे, वैसा करना चाहिए। श्रवणजी को

स्थूल और सूक्ष्म दोनों भक्तियां एक ही प्रवाह में मिली हुई थीं। इस कारण यदि हम उस उदाहरण को लें, तो प्रायः उसका सत्य पूर्ण-सत्य हमारे ध्यान में नहीं आता। सत्यमार्ग से चलनेवाले मनुष्य को, संकट के समय में भी, जो सत्य होता है, वही सूझता है। हम वैराग्यविषयक पद्य सदैव पढ़ा करते हैं; परन्तु यदि वे धर्मसंकट के समय हमारे उपभोग में न आवें, तो फिर उनको केवल 'तोता-रटन' ही कहना चाहिए। सदैव गीता-पाठ करते रहें; पर यदि अन्तकाल में उस की सहायता न हो, तो फिर पाठ करना और न करना दोनों बराबर ही हैं। इसीलिए मैं सदैव कहा करता हूं कि थोड़ा ही पढ़ो, पर जो कुछ पढ़ो, उसका मनन अवश्य करो और उसका रहस्य समझ कर उसके अनुसार चलने को तैयार हो।

जब हम इष्ट मित्रों के विषय में वीतरागी बनेंगे, तभी हमारा हृदय सच्चा दयालु बनेगा और उनकी सेवा भी कर सकेंगे। 'बा' के विषय में मैं जितना अधिक वीतरागी बन रहा हूं, मुझसे उतनी ही अधिक उसकी सेवा हो रही है। बुद्ध ने अपने माता पिता का त्याग कर के ही उनका उद्धार किया, गोपीचन्द ने वैरागी बन कर ही अपनी माता के विषय में अत्यन्त शुद्ध प्रेम प्रकट किया। इसी प्रकार तुम भी अपना चरित्र ठीक कर, नीतिज्ञ बन कर, अत्यन्त निर्मल और दृढ़ होकर, अपने माता-पिता की सेवा करो। जब तुम्हारी आत्मा अत्यन्त शुद्ध अवस्था को पहुंच जायगी, तब तुम्हारे इष्ट मित्रों पर उसका प्रभाव पड़े बिना कदापि न रहेगा।

केप टाउन, मंगलवार
जेठ वदी १।

मि० सिंह के विषय में यहां बैठे २ केवल समाचारपत्र पढ़ कर ही सम्मति नहीं दे सकता। मि० नार्टन भी एक बार ऐसे ही एक मुक़दमें में सरकारी वकील थे। किसको नेता मानें और किसको न मानें, यह प्रत्येक के अपने २ मत का प्रश्न है। साधारणतः जो सत्याग्रही होता है, वह ऐसे मामलों में तटस्थ रहता है। तुम लिखते हो कि ऐसे मामलों में यदि सत्याग्रह करना पड़े, और जेल जाना पड़े, तो समझना चाहिए कि सत्याग्रह का उद्देश्य सफल हो गया। ऐसे मुक़दमे में हमें सदैव बोलना ही चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं। सत्याग्रह कब करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर एक दम नहीं दिया जा सकता। सत्याग्रही जब सत्याग्रह आरम्भ करता है, तब वह इस बात को कुछ पहले से निश्चित नहीं कर रखता। ज्योंही वह अपनी आत्मा की स्फूर्ति के विरुद्ध कोई भी कार्य होता हुआ देखता है, त्यों ही, तत्काल, वह अपने आत्म-बल का उपयोग करता है। मैंने जिस समय सत्याग्रह प्रारम्भ किया, उस समय मैं समझता था कि यह धर्म का एक अंग है। किन्तु अब अनुभव से मुझे यह प्रतीत होगया कि यह स्वयं ही धर्म है; यह एक चिन्तामणि है, और इसी कारण मुझ में वह विचार धर्म-रूप से पूर्णतया परिणत हो गया है। सत्य के बिना दूसरा कार्य नहीं। यह जिसने निश्चित किया, वही सत्याग्रही; और ऐसे मनुष्य को सदैव मौक़े पर उपाय सूझता ही है। सारा

जीवन ही सत्यमय होना चाहिए; धीरे २ यम-नियमादि के पालन से वह प्राप्त होता है। स्थूल विषय सीखने के लिए जैसे वर्षों प्रयत्न करना पड़ता है, वैसा ही प्रयत्न सत्याग्रह का स्वरूप समझने के लिए भी करना चाहिए। ज्यों २ तुम्हारी और हमारी आत्मा के आवरण दूर होते जायँगे, त्यों २ आत्मा विकसित होती जायगी, और बलवान् सत्याग्रही की भांति लड़ेगी।

---

(६०)

लंडन, श्रावण शुक्ला ७, १९८०।

भाई रा० ··· ···,

तुम्हारा प्रेम भूलने से भुलाया नहीं जा सकता। 'बा' के विषय में तुमने विजय प्राप्त कर लिया, यह एक बड़ा ही भारी काम किया। 'बा' ने अपना स्वभाव बहुत कुछ बदल लिया है, ऐसा मुझे यहां अनुभव हो रहा है।

तुमने जो २ व्रत ग्रहण किये हैं, उन सब का दृढ़तापूर्वक पालन करो। उनमें बैताल की भांति चिपट जाओ, इस से तुम म ··· को जीत लोगे, संसार को जीत लोगे, और तुम स्वयं अपने ऊपर स्वराज्य स्थापित कर के हिन्द-स्वराज्य भी स्थापित करोगे। सारांश यह है कि सारे विजय की मुख्य कुंजी हमारा धर्म है। इस प्रौढ़ धर्म की सरलता, और उसी प्रकार विषमता भी अपरम्पार है।

हम जैसी सादगी से रहते थे, उसी को अधिक

चढ़ाओ। जब तक मैं वहां था, तब तक तुम स्वतंत्र थे। अब क़ैद में हो, यह समझो। स्वादेन्द्रिय को बढ़ने न देना। खाने में हानि नहीं, और उसके लिए तो कोई रोक ही नहीं, इत्यादि विचारों के बदले इस विचार द्वारा विजय प्राप्त करो कि यह एक व्याधि कम हुई, अब उसे भी कम करूंगा।

अपनी रहन-सहन की सब बात मुझे सूचित करते रहो। तुम और श्री० प्रा ··· सगे भाई की तरह रहो। खेती में मन लगाओ। सारे फिनिक्स में सुगन्ध फैलाकर उसको धर्मक्षेत्र बनाओ। जहां तक हो सके, मौन धारण करो।

तामिल को मत छोड़ना और मुत्तु इत्यादि, बराबर बोलने की आदत डालते रहना।

मो ··· का आशीर्वाद।

---

(६१)

लंडन ··· ··· १९१४।

भाई रा ··· ···,

शङ्कराचार्य ने कहा है कि जैसे कोई मनुष्य समुद्र-तट पर बैठ कर किसी तिनके से एक २ जलबिन्दु लेकर सारे समुद्र को उलीचने लगे, तो उसको जितने समय और जितने धैर्य की आवश्यकता होगी, मन को वश में करने के लिए उस से भी अधिक समय और धैर्य की आवश्यकता है। इस लिए तुमको निराश न होना चाहिए। क्या उस सम्पूर्ण

होगा ! वरन् जब तुम विचार करोगे कि तुम्हारा कार्य क्या है, तभी मुझे सुख होगा।

---

(६४)

डंडी का जेल,
सन् १६१४ ई० मंगलवार

(आज मुझे) नौ मास की सज़ा हुई है और दो जगह जब छै छै महीने की सज़ा मिल जायगी, तब कुल २१ महीने हो जायँगे, और मैं सब से अधिक भाग्यशाली बनूँगा। वेष बदले बिना कारावास मिलता है, यह एक उपाधि कम है। जब से हड़ताल हुई, आज पहली ही बार मुझे फ़ुरसत मिल रही है।

जेल अब हमारे लिए; बहुत ही साधारण हो रही है, मैंने उसको टालना अच्छा नहीं समझा। आज के मुक़दमे में क़ानूनी दाँव-पेंच बहुत से, थे ; परन्तु उनसे हम क्यों लाभ „उठावें ? मोह इसी को कहते हैं। उसमें एक प्रकार का यह गर्व आजाता है कि यदि मैं बाहर रहूंगा, तो अधिक कार्य करूंगा; और इसीलिए मैं बिलकुल चुप बैठ गया।

---

(६५)

मार्गशीर्ष शुक्ला ८।

भाई श्री रा०··· ···,

तुम्हारा पत्र मिला, जिससे मालूम होता है कि तुम्हारी

इच्छा··· ···में काम करने की है। विचार उत्तम है। मैं तुम को उसमें उत्साह दिलाऊंगा; पर इस विषय में मुझे शंका मालूम होती है कि ऐसा जीवन तुम्हें सहन होगा या नहीं। वहां रह कर (१) ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, (२) सूक्ष्म सत्यव्रत पालन करना पड़ेगा, (३) शारीरिक परिश्रम के कार्य को, अर्थात् कुदाल-फावड़े को, सच्चा काम समझना चाहिए, (४) पुस्तकीय विद्या ज्ञान ही बढ़ाती हो, तो इस उद्देश्य को बिलकुल भूल जाओ। अनायास और प्रसंगानुसार जो कुछ ज्ञान बढ़जाय, वही ठीक होगा, (५) मन में यह दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा चरित्र दृढ़ करना ही हमारा कर्त्तव्य है, (६) जाति अथवा कुटुम्ब के अन्याय का निर्भयतापूर्वक विरोध करने की तैयारी होनी चाहिए, (७) पूर्ण दरिद्रता धारण करनी चाहिए।

यह सब तुम्हारे हाथ से हो सके, अथवा करने की इच्छा हो, तो ज···में आने की बात मन में लाओ। वहां जीवन दिन प्रति दिन अधिक कष्टपूर्ण होता जायगा; और वैसा कष्टपूर्ण होना ही सुख मानना पड़ेगा।

यदि तुम्हारा विचार मार्च महीने में आने का हो, तो उपर्युक्त विचारों का अधिक मनन करो। पत्र लिखते रहो।

---

(६६)

माघ बदी २।

भाई श्री रा··· ···,

तुम्हारा पत्र मिला। सूली पर चढ़ा हुआ मनुष्य भी

(६८)

केप टाउन,

फाल्गुन बदी १०, रविवार।

भाई श्री ... ...,

यदि चित्त पवित्र हो, तो विकारेन्द्रिय के विकृत होने का कोई कारण ही नहीं। पर चित्त है क्या चीज़? यह कैसे जाना जाय कि वह पवित्र है? चित्त ही आत्मा अथवा आत्मा का स्थान है। उसमें पवित्रता का अनुभव करना ही आत्म-ज्ञान होना है; और ज्ञान का अस्तित्व होने पर इन्द्रिय-विकार हो ही नहीं सकता। पर साधारणतया, चित्त शुद्ध करने के प्रयत्न को ही हम चित्त की पवित्रावस्था समझते हैं। तुम्हारे विषय में मुझ में प्रेमवृत्ति है। इसका अर्थ इतना ही है कि, वैसी वृत्ति धारण करने का मैं प्रयत्न करता हूं, फिर जब प्रेमवृत्ति अखंड हो जायगी, तब तो हम ज्ञानी ही बन जायँगे। वैसा तो मैं हूं नहीं। जिसके विषय में मुझे सच्चा प्रेम होगा, वह मेरे हेतु का अथवा मेरे कथन का विपर्यास न करेगा; मेरा तिरस्कार तो कदापि न करेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय हमको कोई अपना शत्रु मानता है, उस समय पहले पहल हमारा ही दोष होता है। गोरों से जो हमारे मामले पड़ते हैं, उनमें भी ऐसा ही समझना चाहिए। इसलिए हृदय की पूर्ण पवित्रता अन्तिम स्थिति है। तब तक बस इतना होगा कि जितनी पवित्रता अधिक होगी, उतने ही विचार अधिक शान्त होंगे। विकार कोई इन्द्रियगत विषय नहीं है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"।

इन्द्रियां तो केवल मनोविकार व्यक्त होने के साधन मात्र हैं। उनसे हम मनोविकार पहचानते हैं।

सारांश यह है कि, इन्द्रियों का नाश करने से कुछ मनोविकार नष्ट नहीं हो सकते। हिजड़े भी विकारमय पाये जाते हैं। जन्मतः नपुंसक मनुष्यों में भी इतने विकार होते हैं कि, उनमें से बहुतेरे अकर्त्तव्य करते हुए दिखाई पड़ते हैं। मेरी गन्ध-शक्ति मन्द है, फिर भी सुवास लेने की इच्छा होती ही है। जब कोई गुलाब इत्यादि की सुगन्ध का वर्णन करता है, तब मेरा मन भी भ्रमर की भांति उधर दौड़ता है और ज़बरदस्ती उसे फिर स्थिर करना पड़ता है। जब मन पर क़ाबू नहीं होता; पर विचार-शक्ति तीव्र होती है, तब कई लोग इन्द्रिय छेद डालते हैं। ऐसे मनुष्यों की अनेक आख्यायिकाएं सुनी गई हैं। वैसी दशा में वैसा करने की आवश्यकता भी हो सकती है। मान लो, मेरा मन चंचल हो उठा; और किसी भगिनी पर कुदृष्टि पड़ी, मुझे काम सता रहा है; पर बिलकुल अंधा नहीं बन गया हूं — अब ऐसे समय में यदि कोई दूसरा उपाय सुझाई न पड़े, तो मेरी राय में इन्द्रिय-छेदन करना ही एक पवित्र कार्य है। क्रमशः शुद्ध होने वाले को ऐसा मौक़ा नहीं आता। जिसको तीव्र वैराग्य प्राप्त हो गया है; परन्तु पिछला आचरण पवित्र नहीं, उसके लिए अवश्य ऐसा मौक़ा आने की सम्भावना रहती है। यदि कोई कहे कि, भाई! हमको ऐसा तात्कालिक उपाय बतलाओ कि विकारोत्पत्ति ही न हो और इन्द्रिय चलायमान न हो, तो उसका यह कथन वन्ध्या के पुत्र चाहने के समान होगा। यह कार्य

अधिक समय चाहता है। जिस प्रकार जादू का आम सिर्फ देखने भर को होता है, उसी प्रकार क्षणिक मनशुद्धि से कोई लाभ नहीं होता। पर हां, वैसा हो सकता है। मन जब यहां तक तैयार हो जाता है कि वह पवित्र हो सके; और उस दशा में सन्तसमागमरूपी पारस को जब वह ढूंढ़ता रहता है, ऐसी दशा में एकाएक सन्तसमागम हो कर अपने पवित्र स्वरूप का दर्शन हो जाता है; और अपवित्रता स्वप्नवत् मालूम होती है। परन्तु इसके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह सब तत्काल हुआ; पर देखने में यह इलाज अवश्य ही ऐसा जान पड़ता है कि यह बहुत साधारण है, कम से कम है; और तात्कालिक है।

एकान्त-सेवन, सत्संग, शोधन, सत्कीर्तन, सद्वाचन, निरन्तर शरीर-दमन, अल्पाहार, फलाहार, अल्प-निद्रा, भोग-विलास का त्याग, आदि बातें जो करेगा, उससे मन का राज्य हस्तामलक हो जायगा। मनुष्य को इतना तो अवश्य करना चाहिए; और अन्य बातों पर भी ध्यान देना चाहिए। जब जब मनोविकार उत्पन्न हो, तब तब उपवासादि व्रतों का पालन करो।

× × × ×

मी ······का कार्य रावण के पन्थ का था। उसने तपस्या कर के राक्षसी-वृत्ति प्राप्त की। रामचन्द्र ने तपस्या कर के दैवीवृत्ति का सम्पादन किया। इस प्रकार हेतु के अनुसार एकही कार्य के भिन्न भिन्न फल प्राप्त होते हैं।

यदि खेती का कार्य ठीक ठीक न चलता हो; और

उसमें अपना कोई दोष तुम्हें दिखाई देता हो, तो उत्साह-पूर्वक उसे निकाल डालो ! तुम जैसे बड़ों के बर्त्ताव पर ही बच्चों का चालचलन अवलम्बित है ।

---

(६६)

केप टाउन,
फाल्गुन बदी १० ।

भाई श्री ··· ···,

तुम्हारा पत्र मिला । तुम्हारे उपवास का समाचार मुझे मिला था । सकारण किया हो, तो मुझे कुछ कहना नहीं । तुमको वहां एकान्त मिलना असम्भव है । ··· ··· में बाह्य-प्रवृत्ति विशेष होनी चाहिए । वहां सेवा-धर्म प्रधान है ।

ज ··· ··· की तबीअत ख़राब हो जाने से मैं घबड़ा गया हूं । वह शीघ्र पूर्ववत् हो जाती तो अच्छा होता ।

म ··· ··· के लिए जी घबड़ा रहा है । उसकी तबीअत ठीक क्यों नहीं होती, कुछ समझ में नहीं आता । वह मेरे साथ चले, यही मुझे भी ठीक मालूम होता है । तुम को इस प्रबन्ध में रहना चाहिए । देश जाने पर देखा जायगा । मन में सदैव यही आता है कि मानसिक रोग के कारण ही ऐसा होता होगा । जेल में तबीअत क्यों अच्छी रही, इसका कारण बराबर ढूंढ़ रहा हूं । परन्तु; उपर्युक्त कारण ही दृष्टि के सामने आता है । वहां मन आप ही आप स्थिर हो गया था, उसी का प्रभाव शरीर पर भी पड़ा, यहां तक कि चाहे

जो खाने को मिलता, तबीअत ठीक ही रहती थी। फिर अब जेल के बाहर वैसा ही मनोराज्य क्यों नहीं प्राप्त किया जा सकता? चाहे जो हो, हिन्दुस्तान में जाना ही म ··· को उचित है, तथापि उसकी सलाह ले लेनी चाहिए।

मैं अपनी एक बात यहां लिखे देता हूं। एक बार 'बा' को अदरक खाने की इच्छा हुई। मुझको भी अदरक का निषेध न था, अतएव उसके साथ मैं भी, यह देखने के लिए कि अदरक में क्या गुण हैं, खाने लगा। 'बा' को ऐसी ऐसी चीज़ें खाने का बड़ा शौक़ है। वह अदरक की जड़ें निकाल लाई। मेरा भी मन चला, यहां तक कि छोटी-छोटी चार पांच कोमल जड़ें मैं चबाने लगा। एक दिन 'बा' ने मिस गुलबाई की टोकरी से बहुत सी जड़ें लेकर एक कोठरी में रख दीं। यह देख कर मुझे बड़ा अचम्भा मालूम हुआ। इसके बाद एक रात व्यतीत हुई। सुबह अचानक मेरे मन में आया—अदरक कैसे खायें? अदरक की एक गांठ की एक पोर में अनेक जड़ें पैदा होती हैं, इसलिए उसमें बहुत से जीव-जन्तु होने चाहिए। इसके सिवाय कोमल जड़ खाना मानों कोमल बालक की हत्या करने के समान है। मुझे अपने विषय में अत्यन्त तिरस्कार उत्पन्न हुआ। बस! इस जन्म में अदरक न खाने का निश्चय किया। इतना ही नहीं—अभी मज़े की बात तो आगे ही है। 'बा' ने देखा कि मैं अदरक़ नहीं खाता। उसने कारण पूछा। मैंने समझा कर बतला दिया। उसको भी समझ में आ गया। उसने अधिक कोमल जड़ें लौटा लीं; और शेष में से खाने को मुझ से आग्रह किया। मैंने इन्कार कर दिया। व्रत

जारी ही है। परन्तु जीभ और आंखों का हाल विलकुल कुत्तों का सा है। जहां नज़र पड़ी कि अदरक खाने की इच्छा होती है। मुंह मे पानी भर आता है, परन्तु जूँठन पर नज़र पड़ने पर भी जिस प्रकार चटोरे कुत्ते, मालिक के देखते हुए, जूँठन खाने का साहस नहीं करते, उसी प्रकार "आत्माराम जी" के देखते हुए जिह्वा उस अदरक को नहीं छूती। अदरक दिन भर मेरी नज़र के सामने ही रहती है; क्योंकि जहां मेरे कागज़-पत्र पड़े हैं, वहीं वह भी रक्खी है। इस समय मेरी ऐसी दशा हो रही है कि कुछ पूछिये ही नहीं। शक्कर और नमक छोड़ने में मुझे जितना कष्ट नहीं हुआ, उतना कष्ट मुझे इस अदरक से मन हटाने में पड़ रहा है। फिर अब तुम अपना दोष क्या निकालते हो? मन को (शराब) पिये हुए बन्दर की जो उपमा दी गई है, सो कुछ झूठ नहीं। मुझसे ज्ञान सीखने की अभिलाषा तुम कैसे रख सकते हो? हम सब एक ही टूटी नौका पर सवार हैं। हां, उसमें मुझे अनुभव का ज्ञान कुछ अधिक है, इसलिए मैं जहां बतलाऊं वहां पैर रखना हो, तो भले ही रखो; पर हैं हम सभी अँधेरे में; और एक ही खोज में। मेरा क़दम शायद विशेष ज़ोर से और विश्वासपूर्वक पड़ता होगा; पर इस विषय में तुम्हारे मन में मेरे सम्बन्ध में विशेष आदर-भाव होना मानों तुम्हारी प्रगति जहां की तहां ठहरा देने के समान ही है। जब मैं सब कामनाओं पर विजय प्राप्त कर लूंगा, तब तुमको अथवा दूसरों को बेधड़क उपदेश दूँगा। इस समय तो आओ, हम सब एक साथ मिल कर मोक्षदाता नारायण की खोज करें; और कदाचित् इस खोज में भूल जाँय, फिसल जायँ अथवा धोखा खा जायँ, तो भी,

आओ हम सब, बड़े साहस के साथ, और धैर्यपूर्वक आगे ही बढ़ते चलें।

---

(७०)

केप टाउन, शनिवार।

भाई श्री ... ...,

मैं चाहता हूं कि तुम सभी मेरे साथ दौड़ो। पर मुझे वैसी आशा नहीं है। मैंने यह कभी नहीं कहा कि जो कुछ मैं करता हूं, वह सब तुम भी करो। हां; जो कार्य तुम अपने सिर पर लो, उसे करना ही चाहिए। ... ...धरपकड़ कर कार्य करने का ग़रज़ही नहीं। पर यदि तुम ... ...का व्यसन आप ही आप समझ कर न छोड़ दोगे: और मुझे धोखा दोगे, तो इसमें तुम्हारा ही दोष है। ... ... बच्चे भी वैसी ही कुछ मर्यादा तक आ गये, यह हमको समझना चाहिए। फिनिक्स में उन्होंने किसी बात का त्याग किया, वहां वह बात त्याज्य मानी गई; फिर वही बात अब दूसरी जगह कैसे की जा सकती है? अलोना ही खाना चाहिए, इस बात की किसी पर ज़बरदस्ती नहीं। परन्तु; गरम मसाला, मिष्टान्न, अति स्वादिष्ट भोजन, चाय, काफी, इत्यादि वस्तुएं सभी के लिए त्याज्य हैं। विषय, चोरी, असत्य और देर से उठना भी सब के लिए त्याज्य है। यह प्रबन्ध जिन को कठोर जान पड़ता हो, उनको वहां रहना ही क्यों चाहिए? प्रत्येक संस्था के कुछ विशिष्ट नियम होते हैं। वे नियम भीतर अथवा बाहर सब जगह पालन करने ही चाहिए, पालन न करने वाले का संस्था में रहना व्यर्थ है!

तुम्हारा कहना है कि बच्चे और दूसरे मनुष्य अनेक बातें "शरमी-शरमा" करते हैं; परन्तु मन से नहीं करते; और धोखा देते हैं। यह कदाचित् मेरा दोष होगा; परन्तु इससे मुक्त होने का मुझे एक ही मार्ग दिखाई देता है, और वह यही है कि मैं स्वयं किसी के साथ न रहूं। पर इस समय मैं ऐसा करना उचित नहीं समझता। रा······शरम से, मेरे न कहते हुए ही, अलोना खाने का ढोंग दिखला कर मुझे धोखा देता है, इसमें मेरा दोष क्या?

× × × तुम अलोना व्रत नहीं करते, इसलिए तुम कुछ मेरे लिए कम नहीं, और ज······ शुद्ध फलाहारी है, इसलिए वह कुछ अधिक नहीं। अलोना अथवा सलोना खाने में क्या कोई पाप-पुण्य थोड़ा ही है? उसमें जो रहस्य है, उसी में पाप-पुण्य है। इमाम साहब ने कुछ समय अलोना का पालन नहीं किया, तथापि इससे वे मेरे लिए कुछ अप्रिय नहीं हो सकते। मिस् श्लेचिन यद्यपि प्रत्येक विषय में मुझ से विरोध करती रही, तथापि मैं कितनी ही बातों में उसका शील तुम सब से अधिक उच्च श्रेणी का समझता हूं। सब प्रकार के फेरफार में यथाशक्ति संयम करने का और उसे बढ़ाने का हमारा उद्देश्य है। यह जिसको स्वीकार न हो, वह मेरा त्याग कर दे—ऐसा मैंने उस रात को कह दिया था; और मैं समझता हूं कि मेरा वह कथन उचित ही था।

× × × नार्टन के काम पर मैं खुश नहीं हुआ और न मैं बंगाली वकीलों का तिरस्कार ही करता हूं। सत्याग्रही इन दोनों प्रसंगों से निर्लिप्त है। उसका कर्तव्य

ही अलग है। सत्याग्रही ठीक है या भ्रमपूर्ण है? यह प्रश्न तुम्हारे पत्र में है। परन्तु यदि यह तुमको अब तक मालूम नहीं हुआ, तो फिर यही कहना पड़ेगा कि यह अनुभव-गम्य है, समझाने से समझ में नहीं आ सकता! यही समझने के लिए तो हम स्वादेन्द्रियादि जीतने के प्रयास में पड़ते हैं। × × यह मत समझो कि संयम का अर्थ अलोना व्रत ही है। तुम दो दिन की बासी सूखी पनेथी नमक के साथ खा कर यदि गुज़ारा करो, तो भी यह कार्य अनेक प्रकार की मेवा का स्वाद चखने से भी अत्यन्त उच्च श्रेणी का है। सच तो यह है कि कार्य की शुद्धता-अशुद्धता का निर्णय इस बात से किया जायगा कि तुम किस उद्देश्य से सूखी पनेथी खाते हो, और मैं किस उद्देश्य से मेवा खाता हूं।

"पवित्रता दूसरे की निन्दा से लज्जित नहीं होती, किन्तु और अधिक प्रबल होती है।"

"तुम से कुछ भी अनुचित बात हुई हो, वह सब मुझसे स्वीकार करो। ऐसा बिना किये तुम्हारे उपवास और सैकड़ों प्रायश्चित्त निष्फल हैं!" मैं वहां आने के लिए आतुर हो रहा हूं, पर अपना कार्य छोड़ना मेरे लिए असम्भव है। चाहे सूर्य पश्चिम में उदय हो, तथापि एक बार की हुई प्रतिज्ञा वापस लेना कदापि सम्भव नहीं।

जिनको मैं अत्यन्त निष्पाप समझता हूं, वे यदि इस प्रकार के पापी होंगे, तो यह देह एक क्षण भर भी अधिक रखने की मेरी इच्छा नहीं।

मनुष्य के लिए अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना कोई सहज काम नहीं।

तुम दोनों को ही इस पत्र से क्रोध आयेगा; परन्तु जो बात मेरे मन में आती है, यदि मैं वह न लिखूं, तो मुझ में जो सत्यांश है, उसमें कालिमा लगेगी; और मैं तुम्हारा अनिष्टचिन्तक कहलाऊंगा। जिससे तुम को दुःख हो, वही बात करना इस समय मेरा धर्म है।

---

(७१)

केप टाउन, शनिवार।

भाई श्री ... ...,

तुम्हारा पत्र आज इतनी देर को मिला है कि आज ही की डाक से उसका उत्तर भेजा नहीं जा सकता और तार देने से भी वह नहीं पहुंचेगा। तार अब सोमवार को ही दूंगा।

जहां माता के प्रेम का प्रश्न है, जहां पुत्र-वात्सल्य का सवाल है, वहां दूसरे का सलाह देना एक बड़ा भारी धर्म-संकट है। फिर भी मुझे सलाह देनी ही पड़ेगी। अपने पिता के पत्र से जब तुमने अपना निर्णय किया, उस समय हमने तुम्हारी माता जी के उद्गारों का अनुमान करही लिया था। उनका पत्र आ जाने से कोई नयी बात नहीं हुई। हां; इतना अवश्य हुआ कि, एक नवीन भाव प्रकट हो गया है, और प्रेम ने स्वाभाविक ही तुम्हारे मन पर प्रभाव

जमा लिया है। अब यदि निर्मोह बन कर, विचारपूर्वक निर्णय करोगे, तो तुम्हारे प्रेम को निर्मल और दिव्य स्वरूप प्राप्त होगा ? तुम अपना प्रेम सारे संसार को दे सकोगे— वैसा करने का प्रयत्न कर सकोगे — यही मातृभूमि का उद्देश्य है, अन्य प्रकार की भक्ति एक स्थूल, लौकिक और देहसम्बन्धी है। तुम बहुधा इससे मुक्त होने के गीत गाया करते हो। "आ संसार असार विचारी" इस गीत को गाकर इसका रहस्य ढूंढो। "जीवने श्वासतणी सगाई" का अर्थ क्या है ? फिनिक्स और अन्य स्थानों की रहन-सहन में यही अन्तर है कि; यहां जो कुछ हम लोग पढ़ते हैं, उसको अपने भीतर दृढ़ करने का प्रयत्न करते हैं। भारतवर्ष जाने की तुम्हारी इच्छा क्षणिक है; क्योंकि पांच अथवा पन्द्रह दिन बाद रोना है; और उसके बाद तो वियोग है ही।

इसके अतिरिक्त अपनी जीवन-यात्रा इस रीति से चलाने की हमारी इच्छा है कि एक कौड़ी भी पास न रहे। किसी ग़रीब मनुष्य ने ऐसे मौक़े पर क्या किया होता, इसका विचार तो करो।

तुमको माता-पिता के दर्शनों की जो सदैव लालसा रहती है, सो उत्तम है। पर इस भावना को दबाकर अपना जीवन विशेष वीतरागी बनाना इस समय तुम्हारा कर्त्तव्य है। अपना चरित्र बनाने के लिए तुमने स्वदेश त्याग किया है। यह तुम्हारा वनवास है। इसी में तुम अपने मा-बाप को प्रसन्न कर सकोगे। तुम स्वच्छन्द नहीं हो, किन्तु दिन पर दिन आत्मोन्नति करते जाते हो—संयमशील हो

रहे हो—इसलिए देश जाने के कर्त्तव्य से तुम मुक्त हो। मैंने छापेखाने की दशा की ओर देख कर यह विचार बिलकुल ही नहीं किया; किन्तु यह सलाह मैंने सिर्फ़ इसी बात को सोच कर दी है कि तुम्हारी आत्मोन्नति किसमें है।

तथापि, यदि अपनी लौकिक मातृभक्ति के कारण तुम्हारा मन घर जाने ही की ओर लगा हो, और यहां शान्त-चित्त से रहना सम्भव न हो, तो तुम प्रसन्नतापूर्वक देश चले जाओ। मेरा लिखना सलाह के ढङ्ग पर है, इस बात का ध्यान रख कर स्वतंत्रतापूर्वक तुम निर्णय करो और तदनुसार ही कार्य करो।

---

(७२)

भाद्रपद कृष्णा १३, १९७०,
विलायत।

चि० म ... ...,

× × × शायद तुम यह जानना चाहते होगे कि मैं, घायल लोगों की सेवा का ही कार्य करने को तैयार क्यों होगया। मेरा कहना यह था कि, दक्षिण आफ्रिका में सत्याग्रही की हैसियत से हम घायलों की सेवा भी नहीं कर सकते। क्योंकि वैसा करना मानो लड़ाई को उत्तेजना देना है। जिसकी इच्छा क़साईख़ाने को उत्तेजना देने की नहीं है, वह क़साई का घर साफ करने के लिए नहीं जायगा। परन्तु मैंने देखा कि विलायत में रह कर मानों मैं एक प्रकार से

लड़ाई में भाग ले रहा हूं। लड़ाई के दिनों में लंडन में जो कुछ खाने को मिलता है वह जलसेना की संरक्षा से ही मिलता है—अर्थात् ऐसी संरक्षित खूराक खाना दोषास्पद है। इसका सच्चा उपाय एक ही है कि यहीं के पहाड़ों अथवा गुफाओं में चला जाय; और मनुष्य-प्राणी की सहायता के बिना जो भोजन-वस्त्र सृष्टि देवे, उसी पर निर्वाह करें। परन्तु इतना आत्मबल अभी मुझ में नहीं आया कि मैं यह कर सकूं। फिर भी हाथ पैर हिलाये विना मिलने वाला, लड़ाई के कारण अपवित्र, अन्न ग्रहण करना अनुचित मालम होने लगा। कर्त्तव्य समझ कर देह अर्पण करने के लिए हज़ारों लोग तैयार हो कर निकल पड़े—ऐसी दशा में मैं ही चुप कैसे बैठता? वन्दूक! बन्दूक तो यह हाथ कभी चलायेगा नहीं—फिर रह गया एक घायल लोगों की सेवा का कार्य—इसी को मैंने उठा लिया। इस प्रकार मन से मेरा संवाद हुआ। हां, यह बात मैं दृढ़तापूर्वक नहीं लिख सकता कि मैंने जो क़दम रखा है, ठीक ही है, तथापि बहुत विचार कर के भी अब तक मुझे दूसरा और कोई मार्ग नहीं सूझा।

× × × ज्यों ज्यों मुझे अनुभव हो रहा है, त्यों त्यों मेरा यही विचार हो रहा है कि यहां आ कर डिग्री प्राप्त करना बिलकुल बेकार है। विद्यार्थियों की दशा करुणाजनक है। वे शिक्षा प्राप्त करते होंगे—समझते होंगे—पर विचार नहीं करते। शील (चरित्र) तो धूल में लोट रहा है। बहुत ही थोड़े मनुष्य, (सो भी वयस्क हो जाने पर) यदि आवश्यकता ही हो तो, इधर आवें।

× × × तुम सब की दशा अवश्य ही बहुत बुरी

होगी ? ईश्वर तुम को सहायता देवे; और कर्त्तव्य करने में दृढ़ता देवे — यही मेरी इच्छा है। × × ×

बहन की गोद में सोने का मौक़ा कब आवेगा—कौन जाने ? म ... ... उनके पास हो आया या नहीं, यह जानने की इच्छा है।

---

(७३)

कार्तिक शुक्ल ७, सं० १९७१,

लंडन।

चि० म ... ...,

तुम को इधर कुछ दिनों से पत्र लिख नहीं सका। आज तबीअत अच्छी है, इसलिए लिखने बैठा हूं। अब तक बिस्तरे पर ही हूं; और जान पड़ता है कि और दस दिन तक ऐसाही पड़ा रहना होगा। इस बार वेदनाएँ बहुत भयंकर थीं, और मेरी राय में इसका कारण यही है कि मैंने डाक्टर मित्र की बात मान ली, सब का आग्रह हुआ, इस कारण मैंने उन वस्तुओं का ग्रहण करना स्वीकार कर लिया जिनके विषय में अंतिम व्रत ग्रहण नहीं किया था। दाल, भात, शाक चार दिन खाया। चारो दिन वेदनाएं बढ़ती ही गईं; और जिसके लिए यह सब किया, सो तो बन्द ही नहीं हुआ। पांचवें दिन नमक खाया, उस दिन असह्य वेदना हुई। स्वयं अन्त में छठवें दिन डाक्टर को छोड़ दिया; और अपनी ओषधि करने लगा। वेदनाएं बिलकुल बन्द हो गईं, और बवासीर

भी दब गई, तथापि मेरी मूर्खता के कारण फिर रोग उभड़ा। नमक खाया, उस दिन, जीवन में पहले ही पहल, रक्त गिरा। यह अबतक जारी ही है। इससे मेरे एक परिचित शाकाहारी गोरे डाक्टर को कोलनवेग से ले आये। उन्होंने कहा कि, नमक की आवश्यकता नहीं, परन्तु कन्द मूल की आवश्यकता है। इसके सिवाय उन्होंने यह भी सम्मति दी कि, चूंकि उपवास से शरीर बिलकुल क्षीण होगया है, इसलिए इस समय तेल, फली, इत्यादि न खाना चाहिए। अतएव आजकल मैं बार्ली के पानी, आठ औन्स मुनक्का, आठ औंस टरनिप, गाजर, आलू और कोबी इत्यादि के काढ़े पर गुज़र कर रहा हूं। शरीर बिलकुल निर्बल हो गया है। इन उपचारों पर भी मेरा पूरा पूरा विश्वास नहीं, परन्तु अभी मुझे अपनी कुंजी अपने हाथ नहीं लगी। इसलिए यह प्रयोग कर के देख रहा हूं। तकलीफ़ बन्द है। रक्त अभी जारी है। मुंह में रुचि बिलकुल नहीं। इस कारण स्वादेन्द्रिय वश करने के लिए यह एक उत्तम अवसर मिल गया है। निम्बू भी बन्द कर दिया है, इस कारण तेल से रहित टरनिप, गाजर का काढ़ा पीने में रुचि बिलकुल ही नहीं रहती, फिर भी मैं उसको आनन्द से पी लेता हूं। पहले पहल बार्ली का पानी ज़रा बुरा लगा था। पर अब उसको भी मज़े में पी लेता हूं। तुमको यह सब विस्तारपूर्वक लिख रहा हूं, इसलिए कहीं घबड़ा मत जाना। आशा है मैं फिर पूर्ववत् हो जाऊंगा; और सो भी फलाहार से ही होऊंगा, इस बात का मुझे पक्का विश्वास है। अनुभव से जो हो वह देखना चाहिए, दूध लेने का आग्रह मित्र-मंडली करती ही रहती है। मैंने साफ़ इनकार कर दिया है। इसके विषय में तो मैंने कहा

दिया है कि, यह मेरा नियम है; अतएव चाहे प्राण भलेही चले जायँ, पर दूध ग्रहण नहीं करूंगा।

'बा' की शक्ति विचित्र है। मेरे उपचार पर उसका विशेष विश्वास जम रहा है।

यहां मुझे इण्डिया आफ़िस से सत्याग्रह करना पड़ा है, इसका वृत्तान्त अगले पत्र में लिखूंगा।

× × × असह्य संकट सहन कर के भी सम्पूर्ण उद्देश्यों का पालन करो। × × सब की तबीअत कैसी है? वहां जाने के बाद बच्चों की आत्मा पर वहां के वायु-मण्डल का क्या प्रभाव पड़ा है, इत्यादि बातें विस्तार के साथ लिखो।

'बापू' का आशीर्वाद।

---

(७४)

लंडन,

कार्तिक बदी ३ सं० १९७१।

चि० म ... ...,

लम्बे लम्बे पत्र लिखने का यह अवसर नहीं है। मेरी तबीअत सुधर रही है। यदि आगामी सप्ताह में कुछ विशेष सुधर गई, तो और भी समाचार लिखूंगा। तीन दिन हुए, बिस्तरा नहीं छोड़ा। ... ... आशा है कि तबीअत ठीक हो जायगी। किन्तु, मेरी चिन्ता मत करना।

भाई म ... ... का पत्र आया था। उसका उत्तर

भेज दिया है । उसको पढ़ कर अमल में लाओ। × ×
भाई सो ··· ··· दवाखाने में जहां हमारे घायल सिपाही पड़े हैं, वहां गये हैं। कमज़ोरी के कारण मैं नहीं गया। इसके साथ कई कागज़ भेजनेका विचार है। यहां प्रारम्भ किया हुआ सत्याग्रह सफल हुआ है । विचित्र संयोग है। 'बा' की तबीअत अच्छी रहती है। मि० कोलनबेक मेरे साथ ही रहते हैं।

तुम सब को यहां बुलाने का विचार है; परन्तु यहां मुझे अधिक दिन रहना पड़ा तो × × × मैंने जो पत्र मि० रो० को लिखा है, उसकी एक नकल भेजने का विचार है। उस पत्र के कारण किसी को अव्यवस्थित न होना चाहिए; और न कुछ आशा करनी चाहिए। यह पत्र पहुँचने के पहिले यदि मेरा तार तुम्हें न मिले, तो ऐसा समझो कि मेरी मांग का उपयोग नहीं हुआ। × × ×

मोहनदास का आशीर्वाद।

---

(७५)

लंडन

कार्तिक वदी १०, १९७१।

चि० म ··· ···,

× × × तुम सब को अच्छा अनुभव प्राप्त हो रहा है। शान्तिनिकेतन में इस रीति से रहो जिस से हम सब के द्वारा उनको सहायता पहुंचे; और उन्हें कुछ भी संकोच

न हो। प्रायः इसी में सुभीता होगा कि, खाने के जिन पदार्थों के बिना तुमको दिक़्क़त पड़ती हो, वे पदार्थ स्वयं तुम्हीं मँगा लो। यहां बैठे हुए मैं तुमको क्या बतला सकता हूं। जो उचित हो वही विचारपूर्वक करना चाहिए। तामील लड़कों को हिन्दी तेज़ी के साथ सिखाओ। नहीं तो बेचारों को कठिनाई पड़ेगी। जब वहां तुम रहते हो, तब थोड़ी सी बँगला भी सीखो, इसमें विशेष समय नहीं लगेगा। यदि कोई तामिल मनुष्य मिल जाय, तो तलाश कर लो। डाक्टर मेहता भाई रा··· ···को यदि दे देंगे, तो अच्छा होगा। तुम्हारे ऊपर एकाएक बड़ी भारी ज़िम्मेदारी आपड़ी है। आशा है, इसको तुम भलीभांति निभाओगे।

भाई सो ··· ··· इत्यादि रोगियों की सेवा करने के लिए स्थान पर जा पहुंचे हैं। मैं अपनी तबीअत के कारण नहीं जा सका। अब जाने की गप्पें मार रहा हूं; पर कठिनाइयां आ ही रही हैं।

कविवर, मि० एँड्रयूज़ तथा मि० पियर्सन की सेवा करते रहो। इस प्रकार का उपाय करते रहो कि सब लोग बड़ों की मर्यादा रखना सीखें। वहां रहनेवाले सब लोगों से पहले उठा करो।

---

(५६)

फ्रैबोवीर रोड ३ डब्ल्यु०,

लंडन,

मार्गशीर्ष बदी ८, १९७१।

चि० म……,

तुम सब के पत्र मिले। मैं अपनी वर्तमान दशा में सबको अलग अलग पत्र नहीं लिख सकता। इसलिए यह पत्र सबके लिए समझा जाय; और सब लोग मुझे पत्र लिखते रहो।

मेरे वहां आने पर तुम मट्ठा खाने की आज्ञा मुझ से मांगने वाले हो, वह मैं यहीं से दिये देता हूं। वहां की परिस्थिति के अनुकूल जिस किसी चीज़ की आवश्यकता समझते हो, उसे पूरा कर लो। मुझ से पूछने के लिए अटक कर न बैठो। सब बातों में संयम का पालन कर के चलने का तत्त्व ध्यान में रखो, तब कोई कार्य करो। बस।

तुम्हारा यह कथन ठीक है कि, खेती ही सच्ची प्रभु-भक्ति और परोपकार है। खेती करते हुए, खाते, खेलते, फिरते, स्नान करते, प्रत्येक कार्य के समय, हरिनाम लेना उचित ही नहीं, बल्कि हमारा कर्त्तव्य भी है। जिसको राममय होने की इच्छा है,—जो प्रयत्न करता है—उसको किसी विशिष्ट समय की आवश्यकता नहीं। परन्तु नव-युवक को नियम की आवश्यकता है। इसलिए जिस समय खेती का काम न हो, वही समय प्रार्थना के लिए नियत करना चाहिए। यह समय उषाकाल—जिस समय अंधेरा

रहता है वही—समझना चाहिए। शास्त्र कहते हैं कि अरुणोदय के पहले ही संध्या आदि कर्म करने चाहिए। इस लिए हम लोगों ने रात का जो समय नियत कर दिया है, वही ठीक है।

खेती के काम में जो उत्साह दिखला रहे हो, उसको बढ़ाओ। फलों के वृक्ष लगाओ। ××× यदि अपने से बड़े प्रत्येक शिक्षक की थोड़ी बहुत सेवा करने का निश्चय करोगे, तो बहुत अच्छा होगा।

जितना हो सके, उतना सामान हाथ से बनालो। जो अपने हाथ से न हो, उसके बिना ही काम चला लेने की आदत डालो। यदि हम खेती पर और शारीरिक परिश्रम पर अपना निर्वाह कर लेने लगें, तो मानों हमने सब कुछ प्राप्त कर लिया, और सब कुछ सीख लिया। मुझे भी यही सीखना है; पर कदाचित् इस शिक्षण के बिना ही मुझे देह त्याग करना पड़ेगा। तुम्हारे विषय में अवश्य ही ऐसा न होना चाहिए।

यदि वहां गुरुदेव को कठिनाई पड़ती हो और काफी स्थान न हो, तो तम्बू अथवा अन्य कोई रहने के सुभीते का प्रबन्ध करवा लेना चाहिये।

मेरा मन मुझ से कह रहा है कि उद्देश्य और रहन-सहन की दृष्टि से संसार में फिनिक्स से अच्छी संस्था नहीं है, और यदि कोई हो भी, तो सभ्य श्रेणी के लिए अज्ञात है। तुम सभी पर यही प्रभाव पड़ा है, यह भी एक तरह से अच्छा है। मेरी तबीअत अभी पहले की सी नहीं हुई कि इतने

में कल से 'बा' को खूब रक्तस्राव प्रारम्भ हुआ है। प्रभु की इच्छा कौन जान सकता है? तुम सब निश्चिन्त रहो।

मेरे भोजन में वनस्पति के क्षार काफ़ी नहीं; इसलिए डाक्टर एलिन्सन ने कन्द-मूल और शाक-भाजी खाने की सलाह दी है। इस कारण, इस भयंकर दशा में भी, वह प्रयोग कर रहा हूं। मेरा भोजन इस प्रकार है—सुबह दो से लेकर तीन चमचा केला और मूंगफली का रसा बनाता हूं। उसमें टोमेटो और एक चम्मच तेल डालता हूं। दोपहर को एक छोटीसी गाजर और आधा छोटा कच्चा टरमिट, तथा गेहूं और केले के आटे के बने हुए आठ बिस्कुट पका खाता हूं। कभी कभी गाजर टरनिप की जगह कच्ची कोबी के दो पत्ते बांट कर खाता हूं। रात को दो चमचा भात पका कर साथही उपर्युक्त रीति से कच्ची भाजी तथा भिगोये हुए अंजीर और उसके साथही केले और गेहूं के आटे की रोटी का थोड़ा टुकड़ा खाता हूं। इस प्रकार आजकल गुज़र हो रहा है। मतलब यह है कि पके हुए भोजन से कच्चे भोजन पर आना चाहते हैं; और गेहूं को छोड़ कर उसकी जगह फल-फलहरी आरम्भ करना चाहते हैं। सुबह दो 'एपल' खाता हूं। कच्ची भाजी खाते हुए अब लगभग एक मास हो गया होगा। इससे कुछ हानि नहीं जान पड़ती। तुम कहते थे कि कच्ची भाजी खाई जा सकती है; परन्तु वह मेरे गले से नहीं उतरती थी। यहां कच्ची भाजी खानेवाले बहुतेरे दिखाई देते हैं। बहुत से विचारों के लोग यहां हैं। परंतु उनका हाल इस समय नहीं लिखूंगा। वह फिर कभी लिखूंगा। मैंने दूध, घी न खाने का अन्तिम

व्रत यहां ग्रहण किया है। डाक्टर लोग बिलकुल पीछे ही पड़े थे, इसलिए सोचा कि यदि प्रतिज्ञा न करूंगा, तो शायद फिसल जाऊं; इसलिए प्रतिज्ञा कर ली। अब इस जन्म में इन वस्तुओं को न खाऊंगा। अन्यान्य व्रत वहां लेंगे। यदि बीच में प्रसंगवश यहीं लेने पड़े, तो कह नहीं सकते।

---

(७७)

(रंगून से आते हुए जहाज़ में)

चैत्र शुक्ला १२, सं० १९७१।

चि० ज ... ...,

तुम्हारा पत्र मिला। × × × स्तम्भ एकाएक गिर गया, इसका मुझे भी आश्चर्य हुआ। यदि यह वही खम्भा है जिस पर अमूल्य लेख खुदे हुए थे, तो बहुत ही बुरा हुआ! तुमने जो कुछ किया सो उचित किया। तुमने अपनी ओर से शंका-निवारण करके (स्तम्भ) तोड़े, सो ठीक ही किया। मुझे वह स्थान दिखलाओ, इससे अधिक मालूम होगा। मैं समझता हूं, इमली शिथिलता नहीं लाती। खाने में अदरक विशेष होनी चाहिए।

फिक्शन का अर्थ है:—कल्पित कहानी। इसमें सन्देह नहीं कि, रामायण और महाभारत में इतिहास कम और कल्पना अधिकांश में है, परन्तु ये दोनों ही धर्म-ग्रन्थ हैं;

और करोड़ों लोग इतिहास से भी अधिक उनका आदर करते हैं, यह उचित ही है। रामायण में भरत का जैसा वर्णन आया है, कदाचित वैसा भरत रामचन्द्र का भाई न हुआ होगा; परन्तु वैसा भरत भारतवर्ष में उत्पन्न अवश्य ही हुआ होगा; इसीलिए तो तुलसीदास उसकी कल्पना कर सके। रामायण में जो गुण अंकित किये गये हैं, वे गुण जिनमें मौजूद होंगे, भारतवर्ष उन्हीं का वन्दन करेगा।

सत्याग्रह के लिए किया हुआ प्रयत्न चाहे व्यर्थ चला जाय और फिनिक्स बिलकुल उजाड़ हो जाय; परन्तु फिर कोई बात मन में लाने की आवश्यकता नहीं। शान्ति के साथ खेती करेंगे। अशान्ति में भीख मांगेंगे, मजूरी करेंगे अथवा भूखों मरेंगे। किया हुआ कार्य कभी व्यर्थ नहीं जाता। यह निरपवाद क़ानून है, इसका दृढ़ विश्वास रखो। फिर खेती करने का मौक़ा आया तो करेंगे; और न आया, तो देखा जायगा! (निश्चिन्त रहना चाहिए) खेती कोई साध्य नहीं है, साधन है। स्थूल दृष्टि से लोक-सेवा एक साध्य है। सूक्ष्म दृष्टि से मोक्ष एक साध्य है, दोनों साध्यों को साधने के लिए खेती एक साधन है। यदि साध्य के साधने में उसके कारण से रुकावट पड़े तो उसको छोड़ देना चाहिए।

क ··· जिस चीज़ के खाने की स्वतंत्रता चाहता है, वह अनर्थ है। तथापि ऐसे लोगों के विषय में, इस विचार से, कि कभी न कभी उनसे रसादिकों का त्याग होगा, तितिक्षा करना उचित है। हम लोगों की संगति उनके लिए सत्संगति ही है।

उसके लिए सरलतापूर्वक जो कुछ करना पड़े, वह सब हमको करना चाहिए। क ··· के विषय का नियम सब के लिए उपयुक्त नहीं है। ऐसी बातों में एक ही नियम नहीं पाला जा सकता। क ··· भी यदि मर्यादा छोड़ देगा तो काम नहीं चलेगा।

'फिनिक्स' संस्था के इस स्वरूप में आने का कारण पूज्य श्री गोखले हैं। उन्होंने हमारी संस्था का नाम फिनिक्स रखा, जिससे तुरन्त ही यह नाम अन्य लोगों तथा उनके ध्यान में आ जावे। 'फिनिक्स' के बहुतेरे उद्देश्य यहां की अन्य संस्थाओं के भी हैं, पर फिनिक्स के उद्देश्य वे स्वयं जानते थे, अतएव 'फिनिक्स' नाम ही जारी रखा गया है। यह नहीं कि, इसी नाम को हम बनाये रखेंगे। जब कहीं स्थायी हो जायँगे, तब फिर नाम ढूँढ़ेंगे। × × × रंगून में अनेक अनुभव प्राप्त हुए।

बापू का आशीर्वाद।

---

(७८)

मदरास, वैशाख सुदी ११।

भाई श्री पु म ···,

अहिंसा के विषय में आप का विचार ठीक है। अहिंसा के अंग दया, अक्रोध, अ-मान, इत्यादि हैं। सत्याग्रह की नींव अहिंसा-धर्म है। यह अत्यन्त स्पष्टता के साथ कलकत्ते में दिखाई दिया; और वहीं विचार किया, इसको अपने व्रत

के तौर पर रख लेना चाहिए। अधिक विचार करने पर यह भी जान पड़ा कि, इसमें सब यम-नियमों का पालन करना चाहिए; और व्रत के तौर पर जब हम उनका पालन करते हैं, तभी उनकी सूक्ष्म स्थिति भी हमारी दृष्टि में आती है। मैं यहां सैकड़ों लोगों के साथ बातचीत करते समय भी सब यम-नियमों को आंखों के सामने रखता हूं।

सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरन होत जन्म न भरत को।
मुनिमन-अगम यमनियम शमदम विषम व्रत आचरत को॥

यह छन्द मुझे उस अवसर पर कलकत्ते में याद आया और उसका खूब मनन किया। इन व्रतों के पालने में ही भारतवर्ष का और हमारा मोक्ष है, यह मुझे साक्षात् दिखाई पड़ रहा है।

अपरिग्रह-व्रत के पालन करने में यह मुख्य बात ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी वस्तु का अनावश्यक संग्रह न किया जाय। यदि खेती के लिए बैलों की आवश्यकता होगी, तो बैल और उनके लिए आवश्यक सामान भर रखेंगे। जहां अकाल की सम्भावना सदैव रहेगी, वहां अनाज का संग्रह कर रखेंगे, परन्तु इस बात की जांच सदैव करते रहेंगे कि, क्या बैलों की और अनाज की वास्तव में आवश्यकता ही है। हम को सारे यम-नियमों का विचारपूर्वक पालन करना चाहिए. इस से दिन दिन दृढ़ता बढ़ती जायगी और त्याग-योग्य नवीन वस्तुएं सूझती जायँगी। त्याग के लिए कोई सीमा ही नहीं। त्याग जितना हो अधिक होगा, आत्म-दर्शन भी उतनी ही शीघ्रता से होगा। मन का झुकाव परिग्रह-त्याग की ओर है; और यदि शरीर-शक्ति के अनुसार त्याग

करते रहें, तो यह अपरिग्रह-व्रत के पालने के समान ही होगा।

इसी प्रकार अस्तेय है। अपरिग्रह में अनावश्यक वस्तुओं के संग्रह का समावेश होता है, अस्तेय में वैसी वस्तुओं के उपयोग का समावेश होता है। मैं एक कुरते से अपना बदन ढांक सकता हूं, फिर भी यदि मैं दो कपड़े पहनूं, तो इसका यह अभिप्राय होगा कि मैंने दूसरे की चोरी की। क्योंकि; जिस वस्त्र का उपयोग दूसरे जीव को हुआ होता, उस वस्त्र को मैं अपना कैसे कह सकता हूं? यदि पाँच केलों से मेरा निर्वाह हो सकता है, तो छठवां खाना चोरी है। मान लो कि हम सब की कम से कम आवश्यकता के अनुसार हमने ५० निम्बुओं का परिग्रह किया। उसमें से मेरे लिए सिर्फ दो की आवश्यकता है, परन्तु यह देख कर कि निम्बू तो अधिक हैं, मैं यदि तीसरा ले लूं, तो यह दूसरे की चोरी होगी।

इस प्रकार से विशेष (आवश्यकता से अधिक) उपयोग करने से अहिंसा-व्रत का भी भंग होता है। यदि अस्तेय-वृत्ति से उपयोग कम करेंगे, तो हम में उदारता बढ़ेगी। प्राणि-मात्र को सदैव अभयदान देने से दया और प्रेम का चिन्तन होता है। ऐसा चिन्तन जो कोई करेगा, उसके विरुद्ध स्वप्न में भी कोई प्राणी उठ नहीं सकता। यह शास्त्र का स्पष्ट सिद्धान्त है। मेरा अनुभव है।

इन सब व्रतों का मूल सत्य है। मन को धोका देकर जो चोरी होगी, वह चोरी नहीं ठहरेगी। मन को चक्कर में

डाल कर जो परिग्रह किया जायगा, वह अपरिग्रह ठहरेगा। सारांश यह है कि पद पद पर अति सूक्ष्म विचार से हम सत्य प्रवर्तन कर सकेंगे। जिस समय यह संशय उत्पन्न हो कि अमुक वस्तु का संग्रह किया जाय अथवा नहीं, उस समय उसका निषेध करना ही उत्तम नियम है। त्याग के कारण सत्य का भंग नहीं होता। जहां यह विकल्प उत्पन्न हो कि बोलें या नहीं, वहाँ मौन धारण करना ही सत्य-व्रत का कर्त्तव्य है।

मेरी ऐसी इच्छा है कि, तुम सभी लोग स्वतंत्र रूप से विचार कर के, फिर जो व्रत ग्रहण करना हो, उसको ग्रहण करो। व्रत ग्रहण करने की सदैव आवश्यकता है। जिस समय जिसको आवश्यकता जान पड़े, उस समय उसको व्रत अवश्य ग्रहण करना चाहिए और जितने व्रत लेने हों, उतने लेने चाहिए।

यह सच है कि श्री रामचन्द्र जी एक बहुत बड़े प्रतापी होगये; और उन्होंने बहुत बड़ा पराक्रम कर के लाखों ही राक्षसों का संहार किया। फिर भी यदि उनके पीछे लक्ष्मण और भरत के समान भक्त न होते, तो आज राम को कोई पहचानता भी नहीं। यदि रामचन्द्र में केवल असाधारण क्षात्र-तेज ही होता, तो कुछ समय के लिए चमक कर उनका माहात्म्य विलीन होगया होता। उन्हीं की भांति असुर संहारक अनेक पराक्रमी पुरुष हो गये हैं, परन्तु उनमें से किसी की भी कीर्ति — माहात्म्य — घर घर गाया नहीं जाता। रामचन्द्र में और ही कोई बात थी। उन्होंने वह लक्ष्मण और भरत के भीतर डाल दी थी; और इसी कारण लक्ष्मण

और भरत महान् तपस्वी निकले। उनकी तपस्या का महत्त्व गाते हुए तुलसीदास जी ने ऐसा वर्णन किया है कि, ऐसा तप, जो महामुनियों के लिए भी अगम्य है, यदि उस तप को करनेवाले भरत जी पैदा न हुए होते, तो मेरे समान मूढ़ को राम-दर्शन कैसे हुआ होता? सारांश यह है कि, लक्ष्मण और भरत राम-यश के, अर्थात् उन की शिक्षा के, मानों द्वारपाल ही हैं। परन्तु यह भी नहीं कि केवल तप ही से सब कुछ सिद्ध हो जाता हो। जिस प्रकार लक्ष्मण ने चौदह वर्ष तक आहार-निद्रा का त्याग किया था, उसी प्रकार इन्द्रजित ने भी किया था। परन्तु तप का रहस्य लक्ष्मण को जो रामचन्द्र से प्राप्त हुआ था, वह इन्द्रजित के पास नहीं था,—यही नहीं, बल्कि तप-प्रभाव का दुरुपयोग करने की उसकी प्रवृत्ति थी, इसी से वह राक्षस ठहरा, और लक्ष्मण जो भक्त और मुमुक्षु तपस्वी थे, उनके हाथ से उसका पराभव हुआ। बस इसी भांति गुरुदेव का आदर्श चाहे जितना उच्च हो, तथापि यदि उस आदर्श को कार्यरूप में परिणत करनेवाला कोई नहीं निकला, तो काल के प्रगाढ़ अन्धकार में वह आदर्श विलीन हो जायगा। और इसके विरुद्ध, यदि उस आदर्श को,— ध्येय को — आचरण में लाने का प्रयत्न करनेवाले कोई निकलेंगे, तो उसका प्रकाश कई गुना अधिक फैलेगा।

आदर्शवत् आचरण बनाने की सीढ़ी तपस्या है, इस लिए यह तप—यह डिसिप्लिन—बालकों के जीवन में उतारना कितना आवश्यक है, इसका विचार करो।

---

(७६)

बम्बई,
पौष वदी ११, सं० १९७१।

चि० म० ... ...,

तुम्हारा पत्र मुझे मिला है। बम्बई के तट पर आते ही आनन्दाश्रु बहने लगे। अब तक आनन्द की लहरों में ही हूं। फिर भी बम्बई में चैन नहीं पड़ता। बम्बई मानों लंडन सी मालूम होती है। लंडन के सारे ढंग यहां भी दिखलाई पड़ रहे हैं। परन्तु हां, वहां का सा सुभीता अवश्य ही यहां नहीं मिला। यह भी भारतवर्ष में बसने का एक लाभ ही कहना चाहिए! सुभीते के लिए हम हैरान न हों — इसीलिए मानों हिन्ददेवी ने लंडन की प्रतिमा ही यहां खड़ी कर दी है। आदर-सत्कार से बिलकुल उकता गया हूं। एक क्षण भर भी विश्राम नहीं मिला। लोग बराबर आते ही रहते हैं, परन्तु इसमें उनको अथवा मुझको कोई लाभ नहीं।

तुम दृढ़तापूर्वक वहीं बने रहे, यह अच्छा किया। किसान के लिए इधर-उधर घूमना सम्भव नहीं। यदि किसान का बच्चा खेतों को वैसा ही छोड़ कर बाप से मिलने दौड़े, तो अधर्म होगा।

मैं समझता हूं कि हिन्दी, उर्दू, तामिल, और बँगला लिपियां हम सब को सीखनी चाहिए।

मैं फलाहारी ही बना हूं। ख़ास कर केला, मूंगफली और निम्बू पर ही निर्वाह करता हूँ।

---

(८०)

फाल्गुन वदी ३, गुरुवार १९७१।

चि० म ... ...,

यह पत्र बम्बई से लिख रहा हूं। प्रायः एक दिन यहां भी अधिक रहना पड़ेगा। तुम्हारे तीन पत्र पूने में मुझे एकदम ही मिले। हम अपनी संस्था अखिल भारतवर्ष के लिए चलावेंगे, इसलिए सारे भारत से भीख मांगेंगे; परन्तु अहमदाबाद से आवश्यकता भर के लिए ज़मीन और घर मांगने ही चाहिए। यह एक नींव की तरह हुआ।

यांत्रिक सहायता के बिना जहां तक हमारा वश होगा, काम चला लेंगे। इस से पुतलीघर बन्द होंगे या नहीं— इसकी चिन्ता करने की हमको आवश्यकता नहीं। यदि पुतलीघर वाले और अधिक पुतलीघर खोलना बन्द कर देंगे, तो इतना ही बहुत होगा। यदि वे यह नहीं करेंगे, तो जिसको हम सुख समझते हैं उसमें हम मग्न रहेंगे। बस।

ब्रह्मचर्य के विषय में अब तक तुम ठीक ठीक नहीं समझ सके। के ... ... को यदि आज मोक्ष मिल जाय, तो क्या तुमको बुरा मालूम होगा? यदि मालूम हो, तो यह

कितनी मोहदशा है? यदि मनुष्य सन्तानोत्पत्ति करता है, तो उसकी सन्तान संसार के लिए सुखदायक होती है — यह मानने में बहुत अहं-भाव और अज्ञान है, अच्छा मनुष्य (सत्पुरुष) संसार की प्रवृत्ति की इच्छा नहीं रखता। ऐसे मनुष्य संसार-निवृत्ति अर्थात् मोक्ष की इच्छा करते रहते हैं। अच्छे मनुष्य के सच्चे साथी उसके पुत्र आदि हैं। इतना भी समझ में न आता हो, तो बड़ा भारी अज्ञान ही कहना चाहिए। मेरे इस कथन का यह अर्थ नहीं कि के··· ··· को विवाह ही न करना चाहिए। उसके संस्कार के अनुसार उसको बुद्धि उपजेगी। तुम्हारा कर्त्तव्य यही है कि तुम उसके सामने उच्च आदर्श रखो। उससे यदि वह नीचे आजावे, तो कोई हानि नहीं। ऐसे मनुष्य की सन्तान परमार्थी हो सकती है, परन्तु उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के उद्देश्य से ही जो ब्रह्मचर्य का खंडन करेगा, उसी की सन्तान उत्तम हो सकती है। इन दोनों अवस्थाओं के बीच का रहस्य भली भांति समझ लो। पहली स्थिति में ज्ञानपूर्वक पाप है, दूसरी में ज्ञान के होते हुए भी थोड़ी दुर्बलता के कारण वह पतित हो रहा है। इससे ऊपर आनेको मार्ग है। पहली में तो ऊपर न आने का निश्चय है, ऊपर आना पतन समझा जाता है। हमारे साफ़ साफ़ कहते हुए भी के ··· यदि विवाह कर लेगा, तो कोई हानि नहीं। यदि विवाह न करेगा, तो उसमें इतनी शक्ति आजायगी कि उसके तेज से सारा संसार कम्पित रहेगा। मा-बाप को अपने लड़कों की उस दशा की इच्छा करनी चाहिए जो उत्तम से उत्तम हो। योग्यतानुसार जैसा लड़का उत्पन्न होगा, वही ठीक है। मेरे विचारों में